

लेखक व प्रकाशक की ओर से -

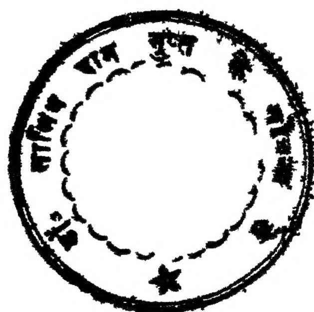
[illegible] -

[illegible]

कामायनी के अध्ययन
की
समस्याएँ



डॉ० नगेन्द्र





नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

प्रकाशक
नेशनल पब्लिशिग हाउस
२६ ए, च द्रलोक, जवाहरनगर,
बिक्री केद्र नई सडक, दिल्ली ।

प्रथम नस्करण
सितम्बर १९६२

कविश्री

सुमित्रानन्दन पत को

सादर-सस्नेह

—नगेन्द्र

विज्ञप्ति

इस पुस्तक मे कामायनी का सागोपाग विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास नही है। इसमे मकलित पाच व्याख्यान अध्ययन की कतिपय नवीन दिशाओ का सकेत मात्र करते हैं। कामायनी के ममज्ञ विद्वान और जिज्ञासु अध्येता कृपया इसी रूप मे इन्हे ग्रहण करे।

सदर्भों का उल्लेखन कामायनी के प्रथम सस्करण से ही किया गया है।

१५ अगस्त, १९६२

हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली।

नगेन्द्र

क्रम

१

कामायनी के अध्ययन-अध्यापन की समस्याएँ

काव्य का मूल प्रयोजन है रसास्वादन—कम से कम कामायनी तक तो यह स्थापना सवथा मान्य है ही आगे की बात आगे देखगे। काव्य का अध्ययन (और अध्यापन भी जो अध्ययन का ही एक साधन है) रसास्वादन की प्रक्रिया का ही अग है—प्रत्येक रूप मे अध्ययन का प्रयोजन और उद्देश्य रसास्वादन ही रहेगा—वह साधन ही रहेगा, साध्य नही बन सकता। साहित्य के क्षेत्र मे जहा अध्ययन रसास्वादन से स्वतन्त्र हुआ, वही वह साधक न होकर बाधक हो जाएगा।

कामायनी महान काव्य है—महाकाव्य है। अत उसका अध्ययन स्पष्टत ही उसके रसास्वादन की प्रक्रिया का एक अग है। काव्य के रसास्वादन की प्रक्रिया का विश्लेषण करते हुए प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक आलोचक आई० ए० रिचड स ने उसके छह अवस्थान माने हैं

१ चाक्षुष सवेदन (बिम्ब विधान),
२ सबद्ध बिम्ब-विधान,
३ स्वतन्त्र बिम्ब विधान,
४ विचार,
५ भावोदबोधन,
६ दृष्टिकोण का निर्माण।

चाक्षुष बिम्ब विधान वह सबसे पहली अवस्था है जब पाठक चक्षुरिन्द्रिय द्वारा अक्षर-ज्ञान प्राप्त करता है। यह ऐन्द्रिय ज्ञान है—अथबोध की अपेक्षा लिपि बोध से इसका सम्बन्ध अधिक है। पाठालोचन इसी के अध्ययन का वज्ञानिक विकास है।

कामायनी के अध्ययन अध्यापन मे सबसे पहली समस्या पाठालोचन की है। आप आश्चय कर सकते हैं कि आधुनिक ग्रथ का पाठालोचन कैसा! किन्तु कामायनी का प्रत्येक अध्येता या अध्यापक इस कठिनाई का अनुभव करता है। वास्तव मे कामायनी कवि की लगभग अतिम रचना है—इसका

मुद्रण जिस समय हो रहा था, उस समय प्रसादजी शया ग्रस्त थे। वसे भी उस समय विराम-चिह्नो के प्रयोग के लिए विशेषत कविता मे, कोई स्पष्ट नियम नही थे, अत कामायनी मे मुद्रण की भूले तो इतनी नही हे, किन्तु विराम चिह्नो का प्रयोग इस तरह किया गया हे कि उससे कई प्रकार की कठिनाइया उत्पन्न हो जाती ह। यहा मै केवल तीन प्रमख कठिनाइयो की ओर इगित करूँगा।

एक तो उन सर्गो मे अर्थ बोध कठिन हो जाता ह जहा प्रूफ शोधक ने यान्त्रिक रीति से छद के सामान्य यति नियमो के अनुसार अद्धविराम या पूणविराम दे दिए हे। एक उदाहरण लीजिये

कोमल किसलय के अचल में
न ही कलिका ज्यो छिपती सी,
गोधली के धूमिल पट मे
दीपक के स्वर मे दिपती सी।
मजुल स्वप्नो की विस्मति मे
मन का उन्माद निखरता ज्यो,
सुरभित लहरो की छाया मे
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यो,
वसी ही माया मे लिपटी
अधरो पर उगली धरे हुए,
माधव के सरस कुतूहल का
आखो मे पानी भरे हुए।
नीरव निशीथ मे लतिका सी
तुम कौन आ रही हो बढती ? (लज्जा, पृ० ९७)

'लज्जा' सग के आरम्भ मे प्रत्येक पद (स्टन्ज़ा) की दूसरी पक्ति के अन्त मे अधविराम (सेमीकोलन,) और चौथी पक्ति के अत मे पूणविराम दे दिया गया है, जबकि इस लम्बे मिश्र वाक्य का प्रधान उपवाक्य "तुम कौन आ रही हो बढती ?" चौथे पद के पूर्वाद्ध मे आता है।

दूसरे उन स्थलो पर कठिनाई होती है जहा उद्धरण चिह्नो (" ") का प्रयोग नियमानुसार नही हुआ। कामायनी मे 'स्वगत चितन, 'स्वगत भाषण' आदि अनेक है—वे कथा विकास के माध्यम के प्रमुख अग है।

इनका स्पष्टीकरण करने के लिए उद्धरण चिह्ना का प्रयोग किया गया है, परन्तु इस प्रकार के प्रयोगो मे एकरूपता नही है। उदाहरण के लिए, 'काम' सग के आरम्भ मे मनु के चितन क्रम के तीन सोपान है जिन्हे उद्धरण चिह्नो के द्वारा पथक किया गया है, किन्तु तीसरे सोपान मे उद्धरण चिह्न दो बार दे दिये गए हे। इन प्रयोगो के कारण कई टीकाकारो को बडा भ्रम हो गया हे और वे यह निणय नही कर पाए हे कि मनु का चितन कहा समाप्त होता हे और काम का वक्तव्य कहा से आरम्भ होता है। 'इडा' नामक सग मे भी कुछ स्थल इस प्रकार के हैं।

तीसरी कठिनाई वहा होती है जहा प्रूफ शोधक ने अपनी बुद्धि से विराम चिह्न दे दिए ह। इसका एक स्पष्ट प्रमाण 'श्रद्धा' सग मे पष्ठ ४८ पर मिलता हे।

कुसुम कानन अचल में मद
पवन प्रेरित सौरभ साकार,
रचित परमाणु पराग शरीर
खडा हो ले मधु का आधार। (श्रद्धा, पृ० ४८)

यहा कानन और अचल के बीच मे योजक चिह्न (हाइफन) लगा हुआ हे जिससे सम्पूण पद का अन्वय वदल जाता है। यदि यह चिह्न न होता तो 'कुसुम-कानन-अचल को एक समस्त पद मान लिया जाता और दूरान्वय का दोष वच जाता—

> "मानो फूलो के वन के अचल मे, पराग के परमाणुओ मे रचित शरीर वाला, मन्द पवन प्रेरित सौरभ साकार होकर मधु का आधार लिये खडा हो।"

किन्तु, योजक चिह्न लग जाने से अन्वय इस प्रकार करना होगा—

> "मानो वन के अचल मे परमाणुओ से रचित शरीर वाला मन्द-पवन प्रेरित, साकार सौरभ रूप कुसुम मधु का आधार लिये खडा हो।"

मूल अथ मे या बिम्ब मे वस्तुत कोई बडा भेद नही है। दोनो ही पाठो मे श्रद्धा के मुख का उपमान फूल और उसकी मुसकान का उपमान मधु ही रहता है, सश्लिष्ट रूप मे श्रद्धा के सस्मित मुख का उपमान मधु-चर्चित फूल ही रहता है, किन्तु कर्ता 'कुसुम' के दूर पड जाने मे दूरान्वय की बाधा

आ जाती है और अथ की विवति मे थोडी कठिनाई होती हे। योजक चिह्नो के मनमाने प्रयोग से कामायनी की व्यारया मे इस प्रकार की कठिनाई स्थान स्थान पर सामने आती है। कामायनी के ममज्ञो को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि नवीनतम सस्करण म इस दोप का यथष्ट परिमाजन कर दिया गया हे।

रसास्वादन की प्रक्रिया मे दूसरा अवस्थान हे सबद्ध बिम्बविधान, जो वास्तव मे अभिधाथ ज्ञान का ही प्रतीक है। भट्टनायक ने इसी को काव्य का 'अभिधा' व्यापार माना है। कामायनी के अभिधाथ ज्ञान मे भी अन्य समसामयिक काव्यो की अपेक्षा कही अधिक कठिनाई होती हे। इसके अनेक कारण है—जिनमे प्रमुख है पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग। ये पारिभाषिक शब्द प्राय तीन प्रकार के हे—(१) सास्कृतिक, (२) दाशनिक और (३) मनोवैज्ञानिक। इनमे से अधिकाश शब्द ऐसे है जिनमे ये तीनो पक्ष ही एकत्र विद्यमान हे। एक शब्द 'काम' को ही ले लीजिये। उसके सास्कृतिक अथ की एक दीघ परम्परा है जो वेदो से लेकर पुराणो तक विस्तत हे। इसी प्रकार दाशनिक अथ की भी, और इधर नवीन मनोविज्ञान का प्रभाव ग्रहण करने के कारण प्राचीन तथा नवीन मनोवज्ञानिक अर्थो के अनेक सूत्र उनमे गुथ गए हे। वास्तव मे इन पारिभाषिक शब्दो का कामायनी मे इतना प्रचुर और साथक प्रयोग है कि इनका सर्वाग अध्ययन किये बिना कामायनी का अथ ही स्पष्ट नही हो सकता। कामायनी मे सग के सग ऐसे है—विशेषकर उत्तराध मे—जहा इस प्रकार के शब्द भरे पड है और उनका वास्तविक रहस्य जाने बिना अथ की विवृति असम्भव है। 'इडा' सग का वह प्रसिद्ध पद जिसकी पहली पक्ति है—"सकुचित असीम अमोघ शक्ति" (पृ० १६५)—इसका प्रमाण है। इस पद मे राग, विद्या, काल, कला, नियति के पारिभाषिक अर्थो का सम्यक् ज्ञान तो अनिवाय है ही, 'सकुचित' जसे शब्द का पारिभाषिक अथ जाने बिना भी काम नही चल सकता। 'आनन्द' सग अपेक्षाकृत सरल प्रतीत होता है, किन्तु बात ऐसी नही है। उसमे भी पद-पद पर इस प्रकार के पारिभाषिक शब्दो की समस्या खडी हो जाती है। एक साधारण सी पक्ति है—"मनु तन्मय बठे उन्मन"—यहा 'तन्मय' और 'उन्मन' के सामान्य शब्दाथ मे विरोध है, किन्तु 'उन्मन' का पारिभाषिक अथ स्पष्ट हो जाने पर यह विरोध अपने आप मिट जाता है। मेरे

सामने भी समस्या आयी और मैं इसका समाधान ढूढने लगा। अनेक प्रकार की कल्पनाएँ मेरे मन मे उठी किन्तु ज्योही तन्त्रालोक की यह पक्ति— **चित्ते समरसीभूते द्वयोरौन्मनसी स्थिति** —मुझे मिल गई, सारा रहस्य खुल गया। यहा उन्मन का अर्थ है द्वैत के प्रति उन्मन, जो समरसीभूत अर्थात् तन्मय चित्त का सहज लक्षण है। इस प्रकार के शत शत उदाहरण आपके सम्मुख प्रस्तुत किये जा सकते हैं। किन्तु मैं प्रस्तुत प्रसग का अनावश्यक विस्तार न कर इस बात पर बल देना चाहता हूँ कि कामायनी के अध्ययन की एक अत्यन्त प्रमुख समस्या है उसके पारिभाषिक शब्दो का शास्त्रीय एव वैज्ञानिक अध्ययन, जो अपने आप मे गम्भीर शोध का विषय है। दिल्ली-विश्वविद्यालय के एक अनुसधाता इस विषय पर कार्य कर रहे है और मुझे आशा है कि उनका शोध ग्रन्थ प्रकाशित होने पर कामायनी के व्याख्यान मे निश्चय ही सहायता मिलेगी।

रसास्वादन का तीसरा अवस्थान है स्वतत्र बिम्बविधान। अभिधार्थ-बोध के बाद शब्द की लक्षणा और व्यजना-शक्तियो के चमत्कार से अनेक प्रकार के बिम्बो की सृष्टि प्रेक्षक के मन म होने लगती है। अपने अमूर्त्त सवेद्य को मूर्त रूप देने के लिए कवि की कल्पना जब शब्द पर आरूढ हो जाती है, तो अनेक प्रकार के ऐसे बिम्बो का सर्जन होता है जो अभिधार्थ से स्वतन्त्र होते हैं। जिस काव्य मे कल्पना का जितना प्राचुर्य होगा, उसमे यह स्वतत्र बिम्ब-विधान उतना ही अधिक होगा। कामायनी मे कल्पना का अपूर्व ऐश्वर्य है, फलत उसमे स्वतत्र बिम्ब विधान अन्य आधुनिक महा-काव्यो की अपेक्षा कही अधिक है। कहने की आवश्यकता नही कि अर्थ व्यक्ति मे इस प्रकार का प्राचुर्य बाधक ही होता है, क्योकि बिम्ब जितना ही स्वतत्र होगा, उतना ही उसमे वैचित्र्य होगा—और यह वैचित्र्य अपनी प्रतीति के लिए पाठक मे सामान्य से अधिक कल्पना की अपेक्षा करेगा। इसलिए कामायनी के अध्ययन की तीसरी समस्या हुई—उसके राशि-राशि बिम्बो का विश्लेषण व्याख्यान।

इन स्फुट बिम्बो की शृखला अन्त मे काव्य के समग्र बिम्ब या महा बिम्ब का निर्माण करती है। यह समग्र बिम्ब ही प्रबन्ध काव्य मे कथावस्तु के नाम से अभिहित होता है। किसी काव्य के स्फुट बिम्ब जितने सश्लिष्ट और वैचित्र्यपूर्ण होगे, उसका समग्र बिम्ब भी उतना ही सश्लिष्ट होगा

आ जाती ह और अथ की विवृति मे थोडी कठिनाई होती हे। योजक चिह्नो के मनमाने प्रयोग से कामायनी की व्यारया मे इस प्रकार की कठिनाई स्थान स्थान पर सामने आती हे। कामायनी के ममज्ञो को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि नवीनतम सस्करण म इस दोप का यथष्ट परिमाजन कर दिया गया हे।

रसास्वादन की प्रक्रिया मे दूसरा अवस्थान हे सबद्ध बिम्बविधान, जो वास्तव मे अभिधाथ ज्ञान का ही प्रतीक हे। भट्टनायक ने इसी को काव्य का 'अभिधा' व्यापार माना है। कामायनी के अभिधाथ ज्ञान मे भी अन्य समसामयिक काव्यो की अपेक्षा कही अधिक कठिनाई होती हे। इसके अनेक कारण है—जिनमे प्रमुख है पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग। ये पारिभाषिक शब्द प्राय तीन प्रकार के हे—(१) सास्कृतिक, (२) दाशनिक और (३) मनोवैज्ञानिक। इनमे से अधिकाश शब्द ऐसे है जिनमे ये तीनो पक्ष ही एकत्र विद्यमान हे। एक शब्द 'काम' को ही ले लीजिये। उसके सास्कृतिक अथ की एक दीघ परम्परा है जो वेदो से लेकर पुराणो तक विस्तत है। इसी प्रकार दाशनिक अथ की भी, और इधर नवीन मनोविज्ञान का प्रभाव ग्रहण करने के कारण प्राचीन तथा नवीन मनोवैज्ञानिक अर्थो के अनेक सूत्र उनमे गुथ गए है। वास्तव मे इन पारिभाषिक शब्दो का कामायनी मे इतना प्रचुर और साथक प्रयोग है कि इनका सर्वांग अध्ययन किये बिना कामायनी का अथ ही स्पष्ट नही हो सकता। कामायनी मे सग के सग ऐसे हैं—विशेषकर उत्तराध मे—जहाँ इस प्रकार के शब्द भरे पडे है और उनका वास्तविक रहस्य जाने बिना अथ की विवति असम्भव है। 'इडा' सग का वह प्रसिद्ध पद जिसकी पहली पक्ति हे—"सकुचित असीम अमोघ शक्ति" (पृ० १६५)—इसका प्रमाण है। इस पद मे राग, विद्या, काल, कला, नियति के पारिभाषिक अर्थो का सम्यक् ज्ञान तो अनिवाय है ही, 'सकुचित' जैसे शब्द का पारिभाषिक अथ जाने बिना भी काम नही चल सकता। 'आनन्द' सग अपेक्षाकृत सरल प्रतीत होता है, किन्तु बात ऐसी नही है। उसमे भी पद पद पर इस प्रकार के पारिभाषिक शब्दो की समस्या खडी हो जाती हैं। एक साधारण सी पक्ति है—"मनु तन्मय बैठे उन्मन"—यहा 'तन्मय' और 'उन्मन के सामान्य शब्दाथ मे विरोध है, किन्तु 'उन्मन' का पारिभाषिक अथ स्पष्ट हो जाने पर यह विरोध अपने आप मिट जाता है। मेरे

सामने भी समस्या आयी और मैं इसका समाधान ढूढने लगा। अनक प्रकार की कल्पनाएँ मेरे मन मे उठी किन्तु ज्योही तन्त्रालोक की यह पंक्ति—**चित्ते समरसीभूते द्वयोरौ मनसी स्थिति** —मुझे मिल गई, सारा रहस्य खुल गया। यहा उन्मन का अथ है द्वैत के प्रति उन्मन, जो समरसीभूत अर्थात् तन्मय चित्त का सहज लक्षण है। इस प्रकार के शत शत उदाहरण आपके सम्मुख प्रस्तुत किये जा सकते है। किन्तु मैं प्रस्तुत प्रसग का अनावश्यक विस्तार न कर इस बात पर बल देना चाहता हूँ कि कामायनी के अध्ययन की एक अत्यन्त प्रमुख समस्या है उसके पारिभाषिक शब्दो का शास्त्रीय एव वैज्ञानिक अध्ययन, जो अपने आप मे गम्भीर शोध का विषय है। दिल्ली-विश्वविद्यालय के एक अनुसधाता इस विषय पर काय कर रहे है और मुझे आशा है कि उनका शोध ग्रन्थ प्रकाशित होने पर कामायनी के व्याख्यान मे निश्चय ही सहायता मिलेगी।

रसास्वादन का तीसरा अवस्थान है स्वतत्र बिम्बविधान। अभिधाथ-बोध के बाद शब्द की लक्षणा और व्यजना-शक्तियो के चमत्कार से अनेक प्रकार के बिम्बो की सृष्टि प्रेक्षक के मन मे होने लगती है। अपने अमूत्त सवेद्य को मूत रूप देने के लिए कवि की कल्पना जब शब्द पर आरूढ हो जाती है, तो अनेक प्रकार के ऐसे बिम्बो का सजन होता है जो अभिधाथ से स्वतन्त्र होते हे। जिस काव्य मे कल्पना का जितना प्राचुय होगा, उसमे यह स्वतत्र विम्ब-विधान उतना ही अधिक होगा। कामायनी मे कल्पना का अपूव ऐश्वय है, फलत उसमे स्वतत्र बिम्ब विधान अन्य आधुनिक महा-काव्यो की अपेक्षा कही अधिक है। कहने की आवश्यकता नही कि अथ व्यक्ति मे इस प्रकार का प्राचुय बाधक ही होता है, क्योकि बिम्ब जितना ही स्वतत्र होगा, उतना ही उसमे वचित्र्य होगा—और यह वैचित्र्य अपनी प्रतीति के लिए पाठक मे सामान्य से अधिक कल्पना की अपेक्षा करेगा। इसलिए कामायनी के अध्ययन की तीसरी समस्या हुई—उसके राशि-राशि बिम्बो का विश्लेषण व्याख्यान।

इन स्फुट बिम्बो की शृखला अन्त मे काव्य के समग्र बिम्ब या महा बिम्ब का निर्माण करती है। यह समग्र बिम्ब ही प्रबन्ध-काव्य मे कथावस्तु के नाम से अभिहित होता है। किसी काव्य के स्फुट बिम्ब जितने सश्लिष्ट और वैचित्र्यपूण होगे, उसका समग्र बिम्ब भी उतना ही सश्लिष्ट होगा

और उसकी रूपरेखा उतनी ही जटिल होगी। कामायनी के विषय मे यह सवथा सत्य है और इसीलिए कामायनी की कथा के सूत्रो को पकडने के लिए अन्य काव्यो की अपेक्षा अधिक प्रयास करना पडता है। इसीलिए अभी तक कामायनी की कथा की एक निर्भ्रान्त रूपरेखा नही बन पाई और अनेक प्रसगो के विषय मे विद्वानो मे मतभेद चला आ रहा है। कामायनी के एक ममज्ञ यह मानते है कि इडा और मनु के पुत्र मानव का विवाह हो जाता है और दूसरे ममज्ञ 'वासना' सग के अ तगत ही श्रद्धा और मनु के रतिकम की परिणति मान लेते है। जब प्रमुख घटनाओ के विषय मे इस प्रकार का मतभेद है तो सामान्य प्रसगो का कहना ही क्या ! अत कामायनी के अध्ययन की एक आवश्यकता उसकी कथावस्तु की रूपरेखा का स्पष्टीकरण भी है।

इस प्रसग का दूसरा पक्ष भी है। जसा कि 'प्रसाद' ने अपने आमुख मे स्वय स्वीकार किया है—कामायनी की कथा के अ त सूत्र वेदो से लेकर पुराणो और आगमो तक बिखरे पडे हैं—अनेक देशो के पुराख्यान और आधुनिक ज्ञान विज्ञान ने भी उसके निर्माण मे योगदान किया है। इन अन्त सूत्रो का विश्लेषण और प्रत्येक के साथ जुडी कथा अथवा कथा माला का अध्ययन कामायनी के अध्ययन की मौलिक आवश्यकता है। इस दिशा मे अनुसधाता अग्रसर हैं, परन्तु पिष्टपेषण काफी हो रहा है। विद्वानो को चाहिए कि दूसरो के अनुसहित तथ्यो को उद्धृत कर देने के स्थान पर उन सूत्रो के आधार ढूढने का प्रयास करे जो अभी अस्पष्ट है।

काव्य रूप का प्रश्न भी इस समग्र बिम्ब से ही सम्बद्ध है। इस समग्र बिम्ब का भीतरी ढाचा कथा वस्तु है और बाहरी ढाचा काव्य रूप है। कामायनी का काव्य-रूप विशिष्ट अध्ययन का विषय है। अबतक निगमन-शैली से परम्परागत महाकाव्य के लक्षणो की कसौटी पर कामायनी की परीक्षा होती रही है और अध्येता उसमे अनेक आधारभूत तत्त्वो—जसे काव्य-व्यापार की सघनता,जीवन स्थितियो के वविध्य आदि—का अभाव देखकर उसके महाकाव्यत्व पर शका करता रहा है, या स्थूल दृष्टि से बहिरग तत्त्वो की गणना-मात्र कर उसे सिद्ध-असिद्ध करता रहा है। किन्तु परम्परा की यथावत् स्वीकृति प्रसाद के स्वभाव के विरुद्ध थी—नाटक, कहानी, उपन्यास, लघु काव्य—सभी मे जब उन्होने परम्परा का सशोधन किया, तो

जिसमे उ होने अपनी सम्पूण जीवन साधना को अभिव्यक्ति दान करने का अ तिम प्रयास किया, उस महाकाव्य को परम्परागत रूप मे स्वीकार करना उनके लिए किस प्रकार सम्भव हो सकता था ? अत कामायनी के काव्यरूप का उचित विचार अत्य त आवश्यक हे। क्या वह महाकाव्य है ? यदि है, तो महाकाव्य के आधारभूत तत्त्वो के अभाव के लिए आप क्या कहेगे और रूपक तत्त्व के साथ उसकी सगति किस प्रकार स्थापित होगी ? महाकाव्य की प्रवत्ति जहा वहिमुख होती है, वहा रूपक की अ तमुख होती है—इन दोनो मे सामजस्य कसे होगा ?

कामायनी मे प्रगीत तत्त्व भी कम समद्ध नही ह और शास्त्रीय दष्टि से प्रगीत की समद्धि भी महाकाव्य का दोष हे। कामायनी का सम्यक अध्ययन इन प्रश्नो का समाधान चाहता है। मेरा अपना समाधान यह है कि कामायनी परम्परागत महाकाव्य, अर्थात ऐहिक जीवन प्रधान महाकाव्य की कोटि मे नही आता—वह ऐहिक जीवन का महाकाव्य नही है, मानव चेतना का महाकाव्य है। ऐहिक घटनाओ मे जो भौतिक विस्तार होता है, वह चेतना मे घटित होने वाली घटनाओ मे नही मिल सकता। उदाहरण के लिए अपने व्यक्तित्व के प्राबल्य से पुरुष द्वारा नारी हृदय की विजय चेतनागत घटना है और शिवधनुभग द्वारा या युद्ध मे पराक्रम प्रदशन द्वारा नारी का वरण भौतिक घटना है। सम्पूण शास्त्रो का मथन करने के उपरा त बुद्धि भ्रष्ट होकर ऋषि मनियो पर अत्याचार करना भौतिक घटना है और बुद्धि की प्रवचना से जीवन-सत्य के प्रति आस्था खो बठना चेतनागत घटना है। मध्ययुग के महाकाव्य मे घटनाओ की यह बहिमुख प्रवत्ति अत्यन्त स्पष्ट थी। द्विवेदी युग मध्ययुग और आधुनिक यग का सधिकाल था। उसके महाकाव्यो मे, उदाहरण के लिए 'प्रियप्रवास' मे, जिसका मुख्य विषय विरह है, बहिमुख घटनाएँ अ तमुख होने लगी और छायावाद मे आकर काव्य की सम्पूण प्रवत्ति के साथ कथा भी एका तरूप से अ तमखी हो गई। इसलिए कामायनी की कथावस्तु मे भौतिक विस्तार का अभाव देखकर उसके महाकाव्यत्व का निषेध करना आधुनिक काव्य की मूल प्रवत्ति से अनभिज्ञता प्रकट करना है।

कामायनी के काव्य रूप की समस्या का यही समाधान है। जसा कि मने अभी कहा—कामायनी मानव चेतना के विकास का महाकाव्य है या

मानव सभ्यता के विकास का विराट रूपक है, इसीलिए रूपक तत्त्व, जो सामान्यत महाकाव्य मे बाधक होता है, यहा साधक बनकर आया है और इसीलिए प्रगीत तत्त्व भी यहा बाधक न होकर साधक ही हुआ हे।

काव्यास्वादन के अब अतिम दो अवस्थान रह जाते है—भावोदबोधन और दष्टिकोण का निर्माण।

भावोदबोधन का प्रश्न वास्तव मे अगी रस का प्रश्न हे। कामायनी का अगी रस निश्चय ही विवाद का विषय है। यो तो प्राय सभी आलोचनात्मक ग्रन्थो मे इस प्रश्न का निणय किया गया है और प्रत्येक लेखक ने अपने मत का पुष्टि मे शास्त्रीय तक दिये हे, पर तु समस्या इतनी सरल नही है।

जसा कि हम तद्विषयक व्यारयान मे स्पष्ट करेगे, कामायनी का अगी रस शवागम के अन्तगत आनन्द-सम्प्रदाय के अनुयायी रसवादियो द्वारा प्रतिपादित शान्तरस या आत्मरस या आनन्दरस हे, जो पूर्वाद्ध मे शृगार और उत्तराद्ध मे शान्त की सीमाओ का स्पश करता है।

काव्यास्वादन का अन्तिम अवस्थान है दृष्टिकोण का निर्माण। इसका अभिप्राय यह हे कि काव्य के मनन से अन्त मे पाठक को एक विशेष दृष्टि कोण या दृष्टि प्राप्त होती है। यही कामायनी के आधारभूत दशन का प्रश्न उठता है जो मौलिक प्रश्न हे। कामायनीकार का लक्ष्य एक ऐसे जीवन दशन की प्रतिष्ठा करना रहा है जो एक साथ समकालीन और सवकालीन समस्याओ का समाधान कर सके। कामायनी एक ऐसे युग की सष्टि है जो नाना प्रकार के आध्यात्मिक या बोद्धिक द्वन्द्वो से आक्रान्त हे—जिसमे अनेक प्रकार की विचारक्रान्तिया एक दूसरे का खण्डन करती हुइ जीव नास्था को खण्डित कर रही है। कामायनी मे इस आध्यात्मिक विप्लव की प्रतिच्छाया स्पष्ट है—आधुनिक युग की परस्पर विरोधी विचारधाराओ—साम्यवादी और पूजीवादी जीवन दष्टि का अन्तर्विरोध, विज्ञान, राजनीति और सस्कृति का पारस्परिक वैषम्य उसमे अत्यन्त मुखर है। समसामयिक प्रश्नो का शाश्वत अर्थात तात्त्विक समाधान—यह प्रसाद की विवेचन-पद्धति का वशिष्टय है। कामायनी मे भी बडे ऊँचे धरातल पर—गम्भीर दाशनिक भूमिका पर, कवि इसी लक्ष्य की मिद्धि के लिए प्रयासशील रहा है। आधुनिक विकासवाद की शवदशन मे परिणति—यह प्रसाद का लक्ष्य

हे, और कामायनी के अध्येता के लिए इस विकास क्रम के सूत्रो का स्वच्छ विश्लेषण प्रस्तुत करना आवश्यक है। कामायनी की दाशनिक पष्ठभूमि के निर्माण मे एक ओर इस युग की अनेक दाशनिक वज्ञानिक विचारधाराओ —विकासवाद, सापेक्षवाद, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद आदि का और उधर प्राचीन विचारधाराओ—वदिक कमवाद, औपनिषदिक एव शैव आन द वाद, बौद्ध शून्यवाद आदि का योगदान है। दशन के इन उलझे हुए सूत्रो म अनुस्यूत आन दवाद के मूल सूत्र को पकड कर कामायनी की दाशनिक गुत्थी को सुलझाना कामायनी के अध्ययन क्रम की अनिवाय समस्या है।

कामायनी के अध्ययन की अन्तिम और सबसे जटिल समस्या हे उसके मूल्याकन की। एक ओर यदि कामायनी आधुनिक हि दी काव्य का सर्वाधिक महत्त्वपूण गौरव ग्र थ हे, तो दूसरी ओर वह सबसे अधिक विवादास्पद भी है। हिन्दी म ऐसे विज्ञ आलोचको और काव्य ममज्ञो की कमी नही है जो कामायनी के प्रतिपाद्य, जीवन-दशन, वस्तु कल्पना और शैली-शिल्प मे अनेक दोष देखकर उसके उपलब्ध गौग्व के प्रति वास्तव म स देहशील है। फिर भी कामायनी का गौरव अनुदिन बढ रहा है। कामायनी के अध्येता को, विशेषकर अध्यापक को, इस विषमता का समाधान करना होता है। प त और दिनकर जसे काव्य मनीषियो के लेख पढने के बाद जब हिन्दी का प्रबुद्ध विद्यार्थी प्रश्न करता है कि इन दोषो के रहते हुए भी कामायनी आधुनिक काव्य की सर्वोच्च उपलब्धि क्यो है, तो अध्यापक के लिए उसका परितोष करना सवथा सरल नही होता। कामायनी के दोषो की उपेक्षा नही की जा सकती। उसके प्र तिपाद्य, जीवन दशन और वास्तु-कौशल आदि मे निश्चय ही अनेक छिद्र है, किन्तु उसकी समग्र परिकल्पना इतनी उदात्त और उसका आयाम इतना विराट है कि अपूव प्रातिभ ऐश्वय के बिना वह सम्भव नही हो सकता था।

मूल्याकन की कसौटी प्रतिभा का एश्वय हे या काव्य शिल्प की निर्दोषता?—कामायनी के मूल्याकन की समस्या का समाधान उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर पर निभर है।

ज्योही मै कामायनी का मूल्याकन करने के लिए प्रवृत्त होता हू मुझे लाजाइनस की यह प्रसिद्ध उक्ति अनायास ही याद आ जाती है—

"महान प्रतिभा निर्दोषता से बहुत दूर होती है। क्योकि सर्वांगीण शुद्धता मे अनिवार्यत क्षुद्रता की आशका रहती है और औदात्त्य मे कुछ न कुछ छिद्र अवश्य रह जाते हैं।' (काव्य मे उदात्त तत्त्व पृ० ९८)

कामायनी के शिल्प विधान मे निश्चय ही अनेक छिद्र रह गए है—उसका वास्तु-शिल्प अपनी पूर्णता को नही पहुच सका उसकी आधारभूत प्रकल्पना मे जो अखडता है उसका प्रतिफलन वस्तु विन्यास मे नही हो पाया—अगो की समन्विति कई जगह टूट गई है, अभिव्यजना मे अनेक त्रुटियाँ रह गई हैं जो व्याकरण और काव्य शास्त्र की कसौटी पर खरा नही उतरती, कुछ बिम्ब अधूरे रह गए है—अलकार छिन्न भिन्न हो गए हैं, शब्दो के फूलो की जाली मे पत के कोमल स्पर्श की साज सँवार नही हैं, कहानी मे मैथिलीशरण गुप्त की प्रबन्ध कला की गठन और प्रवाह नही है—आदि आदि। उसके दोषो की अन्वेषणा आज कुछ अधिक व्यग्रता से की जा रही है। आलोचक उसके गौरव के प्रति जितना आकृष्ट हो रहा है, आज का स्रष्टा] कलाकार उसकी अपूर्णता के प्रति उतना ही आग्रहशील हो उठा है। इस प्रकार कामायनी आधुनिक हिन्दी-साहित्य की सर्वाधिक विवादास्पद, और विवादो के रहते हुए भी कदाचित सबसे महान, उपलब्धि है।

कामायनी की रचना प्रसाद ने महाकाव्य के रूप मे की है। आमुख मे मनु-श्रद्धा की कथा के ऐतिह्य रूप को सिद्ध करने के लिए उन्होने जो उत्कट आग्रह व्यक्त किया है, उसका मुख्य प्रयोजन यही है। अत महाकाव्य के रूप मे ही कामायनी का मूल्याकन करना कवि के मौलिक उद्देश्य के अधिक निकट रहेगा। स्वदेश विदेश के काव्यशास्त्र मे निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणो की गणना प्रस्तुत सदर्भ मे कदाचित अधिक सार्थक न

होगी। इसलिए म महाकाव्य के उन्ही मूल नत्वो को लेकर चलूगा जो देशकाल-सापेक्ष नही ह, जिनके अभाव मे किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नही बन सकती और जिनके सदभाव मे परम्परागत शास्त्रीय लक्षणो की बाधा होने पर भी किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वचित नही किया जा सकता। ये मूल तत्त्व है—१ उदात्त कथानक, २ उदात्त काय अथवा उद्देश्य, ३ उदात्त चरित्र, ४ उदात्त भाव और ५ उदात्त शली। अथात औदात्त्य ही महाकाव्य का प्राण है। कितु इस विषय मे कोई भ्राति नही होनी चाहिए कि औदात्त्य और माधुय मे किसी प्रकार का प्रकट या प्रच्छन्न विरोध हे। इस भ्राति का निवारण करने के लिए म आधुनिक आलोचक ए० सी० ब्रडले के औदात्त्य सम्बधी प्रसिद्ध लेख की ओर इगित करूँगा जिसमे उन्होने उदात्त को सौदयशास्त्र का शब्द मानते हुए उसे व्यापक अथ मे सौदय का ही एक रूप माना हे। उनके अनुसार स्थूलत सुदर के पाच भेद किये जा सकत है—उदात्त भव्य, मधुर, मनोरम और ललित। इनम परा कोटि है उदात्त और अपरा कोटि हे ललित। अत सौदयशास्त्र की दष्टि से ललित और उदात्त मे भी कोई विरोध नही हे—मधुर की स्थिति तो उदात्त के और भी अधिक निकट हे। भारतीय दशन मे ईश्वर की कल्पना और भारतीय काव्यशास्त्र मे धीरोदात्त नायक की कल्पना ब्रडले के मत का मडन तथा उपर्युक्त विरोध का खडन करती है। कामायनी के महाकाव्यत्व का मूल्याकन करने से पहले इस भ्राति का निराकरण आवश्यक था।

उदात्त कथानक

कथानक का अथ हे घटनाओ का समन्वय। अत उदात्त या महान् कथानक का अथ हुआ महान घटनाओ का समन्वय। घटना की महत्ता का मापक है उसका प्रबल प्रभाव तथा देश काल मे विस्तार। इस प्रकार महाकाव्य के कथानक का निर्माण ऐसी घटनाओ से होता है जिनका प्रभाव प्रबल एव स्थायी हो और देश तथा काल दोनो मे जिनका विस्तार हो। इसके साथ ही उदात्त कथानक के लिए यह भी आवश्यक है कि उसका स्वरूप प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे ध्वसात्मक न होकर रचनात्मक हो—उसकी परिणति शुभ और मगलमयी हो। इस दष्टि से विचार करने पर

होगी। इसलिए म महाकाव्य के उन्ही मूल तत्त्वो को लेकर चलूगा जो देशकाल-सापेक्ष नही ह, जिनके अभाव मे किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना महाकाव्य नही बन सकती और जिनके सदभाव मे परम्परागत शास्त्रीय लक्षणा की बाधा होने पर भी किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वचित नही किया जा सकता। ये मूल तत्त्व है—१ उदात्त कथानक, २ उदात्त काय अथवा उद्देश्य, ३ उदात्त चरित्र, ४ उदात्त भाव और ५ उदात्त शली। अथात औदात्त्य ही महाकाव्य का प्राण हे। किन्तु इस विषय मे कोई भ्रान्ति नही होनी चाहिए कि औदात्त्य और माधुय मे किसी प्रकार का प्रकट या प्रच्छन्न विरोध हे। इस भ्रान्ति का निवारण करने के लिए म आधुनिक आलोचक ए० सी० ब्रडले के औदात्त्य सम्बन्धी प्रसिद्ध लेख की ओर इगित करूँगा जिसमे उन्होने उदात्त को सौदयशास्त्र का शब्द मानते हुए उसे व्यापक अथ मे सौन्दय का ही एक रूप माना ह। उनके अनुसार स्थूलत सुन्दर के पाच भेद किये जा सकते है—उदात्त भव्य, मधुर, मनोरम और ललित। इनम परा कोटि है उदात्त और अपरा कोटि हे ललित। अत सौन्दयशास्त्र की दृष्टि से ललित और उदात्त मे भी कोई विरोध नही है—मधुर की स्थिति तो उदात्त के ओर भी अधिक निकट हे। भारतीय दशन मे ईश्वर की कल्पना और भारतीय काव्यशास्त्र मे धीरोदात्त नायक की कल्पना ब्रडले के मत का मडन तथा उपयुक्त विरोध का खडन करती है। कामायनी के महाकाव्यत्व का मूल्याकन करने से पहले इस भ्रान्ति का निराकरण आवश्यक था।

उदात्त कथानक

कथानक का अथ ह घटनाओ का समन्वय। अत उदात्त या महान कथानक का अथ हुआ महान् घटनाओ का समन्वय। घटना की महत्ता का मापक है उसका प्रबल प्रभाव तथा देश काल मे विस्तार। इस प्रकार महाकाव्य के कथानक का निर्माण ऐसी घटनाओ से होता है जिनका प्रभाव प्रबल एव स्थायी हो और देश तथा काल दोनो मे जिनका विस्तार हो। इसके साथ ही उदात्त कथानक के लिए यह भी आवश्यक है कि उसका स्वरूप प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप मे ध्वसात्मक न होकर रचनात्मक हो—उसकी परिणति शुभ और मगलमयी हो। इस दृष्टि से विचार करने पर

यह सिद्ध करना कठिन नही है कि कामायनी की घटनाएँ अत्यन्त उदात्त एव महान है। किन्तु, उनका क्षेत्र ब्रह्माण्ड नही है, पिण्ड है—मानव-आत्मा या मानव चेतना है। परम्परागत महाकाव्यो की आधारभूत घटनाओ—युद्ध आदि—की भाति उनका विस्तार भौतिक जगत मे लक्षित नही होता—उनका विस्तार होता है मानव चेतना के भीतर, जहा घटित होकर वे समग्र मानव जीवन पर गहरा और स्थायी प्रभाव डालती है। कामायनी की प्रमुख घटनाए है स्वार्थपूर्ण अहकार का पराभव, पुरुष और नारी का प्रथम मिलन नारी का सर्वस्व समर्पण, पुरुष और नारी के प्रणय पूर्ण ससर्ग से सन्तति विकास, पुरुष की अबाधित अधिकार भावना—उसके लिए बुद्धि बल से भौतिक सघर्ष और अधिकार क्षेत्र का प्रसार अतिचार एव कुठा, बुद्धि पर पूर्ण अधिकार करने का उद्दाम प्रयत्न और उसके परिणामस्वरूप मानव-चेतना की पूर्ण विफलता, इस विफलता के मूल कारण की अवगति, और अन्त मे सामरस्य तथा उसके फलस्वरूप पूर्णानन्द की सिद्धि। मानव के अधिमानसिक जीवन मे इन सभी घटनाओ का महत्त्व अक्षुण्ण है। विश्व मे होने वाली प्रबल घटनाएँ, नाश और निर्माण के समस्त दृश्य, भौतिक सघर्ष और विकास के विभिन्न रूप इन्ही घटनाओ के प्रतिबिम्ब है। अवचेतन मनोजगत के उद्घाटन और तत्सम्बन्धी अनुसन्धानो से यह स्पष्ट हो गया है कि भौतिक जगत का विराट घटनाचक्र मानव चेतना के अतल गह्वरो मे होने वाले घटना चक्र की छाया मात्र है। कामायनी के कवि ने इस रहस्य को समझा है और वर्तमान युग की वैज्ञानिक उपलब्धियो का उपयोग करते हुए अपने महाकाव्य मे इसका प्रतिफलन किया है। कहने का अभिप्राय यह है कि कामायनी की घटनाओ मे निश्चय ही महाकाव्योचित प्रबलता और आयाम है, किन्तु यह प्रबलता और आयाम आधिभौतिक अर्थात बाह्य एव ऐहिक नही है—चेतनागत तथा आध्यात्मिक हैं।

उपर्युक्त स्थापना का अर्थ यह नही होना चाहिए कि कामायनी की घटनाओ मे भौतिक जगत् की सघनता का सर्वत्र अभाव है। जहा कथा का विकास मूर्त्त जगत् की पृष्ठभूमि मे होता है, वहा परम्परागत महाकाव्य की घटनाओ की सघनता एव विस्तार भी यथावत् विद्यमान है। उदाहरण के लिए आरम्भिक सर्ग से देव-दम्भ और प्रलय के वर्णन अथवा 'सघर्ष' सर्ग से सारस्वत नगर के वैभव के बीच प्रजा के साथ मनु के द्वन्द्व का चित्रण

प्रस्तुत किया जा सकता है। फिर भी कामायनी के कथानक की गरिमा इन प्रसगो मे उतनी नही है जितनी कि मनु (मानव) के अहकार के विस्तार मे अथवा बुद्धि पर पूण अधिकार करने के लिए मानव चेतना के निर्बाध प्रयास मे, अथवा आत्मा की तीन प्रवत्तियो के प्रतीक त्रिलोक के दशन से मानव चेतना द्वारा सामरस्य की सिद्धि मे। वाह्य दष्टि से देखने पर ये घटनाएँ अपनी अमूतता के कारण अनाकषक प्रतीत होती है, कि तु वतमान युग मे जिस प्रकार मानव चेतना बुद्धि पर अबाध अधिकार प्राप्त करने का दुदम प्रयास कर रही है, उसे देखते हुए इससे प्रबलतर घटना की कल्पना करना सम्भव नही है।

सामासिक रूप से विचार करने पर भी कामायनी के कथानक मे अपूव आयाम है। वह केवल एक महापुरुष की जीवन गाथा नही हे, एक राजवश का वत्तवणन मात्र नही है, एक युग या राष्ट की कथा नही हे, वह तो सम्पूण मानवता के विकास की गाथा है—अथ से इति तक। अ य महा काव्य जहा मानव सभ्यता के खड चित्र प्रस्तुत कर रह जाते हे, वहा कामायनीकार ने उसका समग्र चित्र प्रस्तुत करने का साहसपूण प्रयास किया है। वह प्रयास पूण नही हुआ, किन्तु इसका परिधि विस्तार इतना अधिक है कि अपनी अपूणता मे भी यह अदभुत है—असामा य है।

उदात्त काय

कामायनी का काय है भाववत्ति, कमवत्ति तथा ज्ञानवत्ति के सामजस्य द्वारा समरसता और उसके फलस्वरूप आन द की सिद्धि। कवि ने इस काय की सिद्धि के लिए त्रिलोक के प्रतीक की उदभावना कर अत्यन्त कौशलपूवक उसे दिग त विस्तार प्रदान कर दिया है। आध्यात्मिक जीवन की सबसे बडी दुघटना है इच्छा, क्रिया और ज्ञान की विश्रृखलता। मानव चेतना के इतिहास मे जब जब इन तीनो मे असामजस्य हुआ है, जीवन-विकास अवरुद्ध हो गया है—ससार मे अराजकता और अशा ति फल गई है। आज के भौतिक जीवन का भी सबसे बडा अभिशाप यह है कि हमारे धम और सस्कृति की दिशा एक है, राजनीति की दूसरी और विज्ञान की तीसरी—क्रमश भाव, क्रिया और ज्ञान के ये प्रतिरूप एक दूसरे से असम्बद्ध है। इसका परिणाम है वतमान अशा ति—जो वास्तविक युद्ध अथवा शीत-

युद्ध आदि के रूप में व्यक्त हो रही है। इस भीषण समस्या का समाधान है—मानवता के प्रति अटूट श्रद्धा रखते हुए जीवन की इन तीनो प्रवृत्तियो मे ऐकात्म्य स्थापित करना। ज्योही मानव कल्याण को लक्ष्य बनाकर हमारी सस्कृति हमारी राजनीति और हमारा विज्ञान एकान्वित हो जाएँगे, तुरन्त ही इस युग की विषम समस्या का समाधान हो जाएगा। इस प्रकार कामायनी मे वर्तमान के व्यापक फलक पर प्रसाद ने मानव जीवन की उस मूल समस्या का चिन्तन समाधान प्रस्तुत किया है जो सामयिक होकर भी शाश्वत है। सामयिक तथा सार्वकालिक और एकदेशीय तथा सर्वदेशीय का यह एकीकरण महाकाव्य का प्रधान लक्षण है और इन लक्षणो का निर्वाह जिस भव्य रूप मे कामायनी के अन्तर्गत हुआ है वैसा अन्यत्र नही। इस प्रकार कामायनी का कार्य सर्वथा उदात्त है। ऐसी गरिमा और ऐसा विराट आयाम और किस महाकाव्य के कार्य मे है?

उदात्त भाव

कामायनी का मूलवर्त्ती भाव अथवा महाभाव भी, जिसे काव्यशास्त्र की शब्दावली मे 'अगी रस' कहा गया है, अपने प्रतिपाद्य के अनुरूप ही है। जिस प्रकार कामायनी का कथानक जीवन को अखण्डता मे ग्रहण करता है और जिस प्रकार कामायनी का प्रतिपाद्य जीवन की एकागी सिद्धि न होकर सर्वागीण सिद्धि ही है, इसी प्रकार कामायनी का अगी रस भी एकागी शान्त या शृगार नही है वरन् अखण्ड आत्मरस है। इसी को महारस या आनन्द रस कहा गया है।

उदात्त चरित्र

भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार महाकाव्य का नायक धीरोदात्त होना चाहिए और धीरोदात्त के लक्षण हैं महासत्त्व अतिगम्भीर, क्षमावान, अविकत्थन, स्थिर, निगूढ अहकारवान और दृढव्रत। इन लक्षणो के आधार पर स्पष्टत मनु धीरोदात्त नायक सिद्ध नही होते। धीरोदात्त नायक के व्यक्तित्व का निर्माण जहा मानव सभ्यता की अत्यन्त विकसित स्थिति मे ही सम्भव है, वहा मनु का व्यक्तित्व-विकास मानव चेतना के विकास का प्रतीक है। मनोविज्ञान तथा विकासवाद (जिनको प्रसाद ने आधार रूप मे ग्रहण किया है)—दोनो के ही अनुसार आदि पुरुष मनु का चरित्र पूर्ण

विकसित रूप मे अकित नही किया जा सकता था। सहज मानव चेतना का प्रतीक होने के नाते मनु का चरित्र विकासशील हे, शव दशन की शब्दावली मे वह पाशव या आणव स्थिति से आरम्भ होकर शाम्भव स्थिति को प्राप्त करता है। नायक के चरित्र का यह विकास कामायनी के प्रतिपाद्य के अनुरूप ही नही ह वरन उसके लिए अनिवाय भी हे—धीरोदात्त गुणो से समन्वित विकसित चरित्र की सगति न कामायनी के कथानक के साथ बठ सकती है और न उसके प्रतिपाद्य के साथ ही। इसलिए, मन की दुबलताओ का उल्लेख कर जो कामायनी की दुबलताओ की ओर सकेत करते हे, वे कामायनी के स्वरूप तथा लक्ष्य दोना के प्रति अनभिज्ञता प्रकट करते ह। अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण मन अहकार, स्वाथ, इद्रिय लिप्सा, अस्थिरता आदि अनगढ मानव चेतना की हीनतर प्रवत्तियो मे मुक्त नही हो सकते थे कि तु क्रमश इन दुगुणा पर विजय प्राप्त कर वे पूण समरस मानवत्व, आ यात्मिक शब्दावली मे शिवत्व, की सिद्धि करते हे जहा वे धीरोदात्त स्थिति स भी कही ऊपर उठ जाते ह।

एक पुरुष का प्रकृति के विरुद्ध सघष और उस पर विजय का महान प्रयास!—मनु के चरित्र चित्रण का एक रूप यह भी हो सकता था, जो परम्परागत महाकाव्य के अनुरूप होता। आचाय शुक्ल प्रजापति मनु का चरित्र विकास इसी रूप म देखना चाहते थे इसीलिए कामायनी मे उसका अभाव देखकर उनका मन खिन्न हो गया। इसमे स देह नही कि प्रबन्ध काव्य की दष्टि से मनु का वह विराट् व्यक्तित्व विकास निश्चय ही बडा आकषक होता, कि तु कामायनी का कवि तो अपने कथानक तथा प्रतिपाद्य की विशेष परिस्थितियो से विवश था, अत उसके लिए यह पद्धति ग्रहण करना सम्भव ही नही था। अ तमुख कथानक के नायक का व्यक्तित्व-प्रसार देश काल के विस्तार म सम्भव नही था, इसीलिए चाणक्य, स्कन्द गुप्त आदि धीरोदात्त चरित्रा की सफल सजना करन के उपरा त भी प्रसाद शुक्लजी की उस विराट कल्पना मूर्ति का अकन नही कर सके। यह भव्य चित्र उनकी कल्पना मे उभरा ही न हा, ऐसा नही हे। इस शका को निमूल करने के लिए कामायनी की आरम्भिक पक्तिया का उद्धरण पर्याप्त होगा

हिमगिरि के उत्तुग शिखर पर,
बैठ शिला की शीतल छाह,
एक पुरुष भीगे नयनो से,
देख रहा था प्रलय प्रवाह।
नीचे जल था, ऊपर हिम था,
एक तरल था, एक सघन,
एक तत्त्व की ही प्रधानता
कहो उसे जड या चेतन।(चिन्ता, पृ० ३)

प्रकृति के सार्वभौम आधार फलक पर एक पुरुष के रूप मे मनु की यह प्रतिष्ठा उसी विराट कल्पना की ओर सकेत करती है, किन्तु स्पष्ट है कि उपर्युक्त कारणो से कवि उसे मूर्त्तरूप नही दे सका।

श्रद्धा का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल है। सात्त्विक गुणो ने पूर्ण विश्व मगल भावना की प्रतीक श्रद्धा का व्यक्तित्व विकास की अपेक्षा नही करता, क्योकि स्पष्टत श्रद्धा, मनु की भाति, अनगढ मानव चेतना का उसके समग्र रूप मे प्रतिनिधित्व नही करती। मनु के व्यक्तित्व मे जहा मानव-चेतना की हीनतर और उच्चतर दोनो ही प्रवृत्तियो का मिश्रण अनिवार्य था, वहा श्रद्धा केवल उच्चतर प्रवृत्तियो अर्थात दया माया, ममता, मधुरिमा और विश्वास आदि ऐसी प्रवृत्तियो का ही प्रतिनिधित्व करती है जो मानव चेतना को पूर्णत्व, दार्शनिक शब्दावली मे पूर्ण शिवत्व प्राप्त करने मे सहायता देती है। इस प्रकार श्रद्धा के चरित्राकन मे वह बाधा नही रही जो मनु के प्रसग मे थी, अत उसमे परम्परागत महाकाव्योचित औज्ज्वल्य एव गरिमा का भी अद्भुत समावेश हो गया है। यही इडा के विषय मे भी सत्य है। उसके व्यक्तित्व मे भी वाछित ऐश्वर्य एव गरिमा है। किन्तु श्रद्धा और इडा अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए साकेतिक अर्थ का द्योतन भी करती है, स्वभावत उनकी प्रतीकता के कारण चारित्रिक रूपरेखा मे वैसी दृढता और मूर्त सघनता नही आ सकी, जैसी कि पाश्चात्य महाकाव्यो के चरित्रो मे मिलती है।

उदात्त शैली

कामायनी की शैली सर्वत्र ही एक अपूर्व लोकोत्तर स्तर पर अवस्थित रहती है। उसमे क्षुद्रता का एकान्त अभाव है, प्रयत्न करने पर सपूर्ण काव्य

मे एकाध अपवाद ही मिलेगा। पाश्चात्य आचार्यों ने महाकाव्य की शली का प्रमुख गुण माना है, असाधारणता। कामायनी की शली मे इस गुण का प्राचुय प्राय दाष की सीमा तक पहुच गया है। यहा सामा य प्रसगो मे भी शली का स्तर प्राय असामा य ही रहता है और जहा कवि सामा य धरा तल पर उतरने का प्रयत्न करता है, वही शली का स्वरूप विकृत हा जाता हे। फलत उसमे अदभुत ऐश्वय एव अलकार विलास है, लक्षणा व्यजना का विचित्र चमत्कार हे। कल्पना तथा भावना के अपूव वभव के कारण इस शली मे मूर्ति विधान एव बिम्ब योजना की अदभुत समद्धि मिलती है। कामायनी की भाषा सवत्र ही चित्रभाषा एव प्रतीक भाषा हे जिसम तत्सम तथा सचित्र, सस दभ शब्दावली का मुक्त प्रयोग हुआ हे। भाषा और अभि-व्यजना के इन असाधारण गुणो के फलस्वरूप कामायनी की शली सामा य से सवथा भि न हो गई हे।

शली की असाधारणता के प्रति आग्रह के कारण ही कामायनी की शली मे इतिवत्त वणन का एकान्त अभाव है। कवि न अत्य त सचेप्ट रूप से मनन, चि तन, सवाद, स्वगत, स्वप्न, दश्य विधान आदि के द्वारा कथा का विकास किया हे। इतिवत्त शली के प्रति प्रसाद के मन मे एक विचित्र वितष्णा रही है। कामायनी मे कथा का स्तर कल्पना विलास, दाशनिक गरिमा और रागात्मक ऐश्वय के कारण सामा य से इतना भि न रहा हे कि वत्त वणन की ऋजुता इस समद्धि का वहन नही कर सकती थी।

भारतीय काव्यशास्त्र मे, व्यजना से, महाकाव्य की शली को नानावणन-क्षमा माना गया है। कामायनी की शली मे यह गुण स्पप्टत विद्यमान है। वह सूक्ष्म से सूक्ष्म और उदात्त से उदात्त मन स्थिति का अकन करने मे पूणत समथ है। सु दर और विराट, मधुर और भयानक आदि के वणन मे उसकी समान गति है। इसके अतिरिक्त महाकाव्य की शली के लिए यह भी अपे क्षित है कि वह विस्तारगभा हो, मूत, सघन एव प्रबल हो, उसम दुदम नद प्रवाह हो। ये गुण वास्तव मे ऐहिक कथा प्रधान महाकाव्यो की शली मे मिलते है। कामायनी मे भी जहा भौतिक घटनाओ की प्रधानता है, इन गुणो का सम्यक प्रयोग है जसे प्रलय वणन, सघष आदि मे, मनु के अह कार आदि की अभिव्यजना मे ओज गुण का भी उचित समावेश हे। कि तु शैली के अधिकाश कलेवर म सघनता आदि गुणो का निर्वाह सम्भव नही

हुआ। क्योकि कथावस्तु अ तर्मुख हे बहिमुख नही ह, इसलिए मूत्त घट-नाओ और दश्यो के सकुल वणन से शली मे जो एक प्रकार का सहज घनत्व एव नव प्रवाह उत्पन्न हो जाता ह, वह यहा नही मिल सकता। इसी अन्त मुखता के कारण कामायनी की शली मे प्रगीत तत्त्व स्थान-स्थान पर उभर आता हे। सामा यत वह महाकाव्य का दोष हे, किन्तु यहा तो विधान ही अन्तरग है और घटनाओ की विकास भूमि मानव चेतना हे, इसलिए प्रगीत तत्त्व यहा बाधक न होकर साधक ही हुआ है।

समग्रत कामायनी की शली निश्चय ही भव्य हे। कवि की प्रतिभा ने एक विराट शू य को कल्पना और भावना के ऐश्वय से जगमग कर दिया है।

निष्कष

कामायनी का महाकाव्यत्व असदिग्ध है। परम्परा का नितात निर्वाह प्रसाद के स्वभाव के विपरीत था, अत कामायनी मे भारतीय और पाश्चात्य काव्यशास्त्र—दोनो मे से किसी एक के भी लक्षणो का पूण निवाह खोजना व्यथ होगा। फिर भी महाकाव्य के प्राय सभी महत्तत्त्व कामायनी मे स्पष्टत विद्यमान है—केवल एक ही विपयय है वह है काय व्यापार का अभाव जिसके परिणामस्वरूप कथा मे वाछित भौतिक विस्तार नही आ सका। क्योकि कामायनी का वस्तु विकास बहिमुख न होकर अ तमुख हे, वह मानव चेतना के विकास की कथा है जो मनु के जीवन विकास के माध्यम मे कही गई है, साधारणीकरण के लिए यहा कवि ने रूपक की भावमय पद्धति ग्रहण की है जिसके द्वारा मनु मानव चेतना के प्रतिनिधि बन जाते है। इस प्रकार परम्परागत महाकाव्य, ऐहिक जीवन-प्रधान महा काव्य की कोटि मे कामायनी नही आती। वह ऐहिक जीवन का महाकाव्य नही है, मानव-चेतना का महाकाव्य हे—अत रूपक तत्त्व, जो सामा यत महाकाव्य मे बाधक होता है, यहा साधक बनकर आया है, इसीलिए प्रगीत-तत्त्व भी यहा बाधक न होकर साधक ही हुआ है। मानव चेतना के विकास का यह महाकाव्य अथवा मानव-सभ्यता के विकास का यह विराट् रूपक साहित्य के इतिहास मे एक नवीन प्रयोग है—एक अद्भुत उपलब्धि है। इसी रूप मे यह परम्परा से भि न है—रूपक और महाकाव्य के सम वय के कारण—कथा के अ तमुख विकास के कारण।

यद्यपि सस्कृत काव्यशास्त्र मे प्रस्तुत प्रमग मे थोडा मतभेद है फिर भी आचार्यो का बहुमत इसी पक्ष म रहा है कि महाकाव्य के अ तगत, जहा प्राय सभी रसो का समावेश होता है, उनमे स कोई एक प्रमुख रस अगी रूप म विद्यमान रहता हे। स्थिति स्पष्ट है—जीवन के वविध्य एव सर्वांग चित्रण के कारण महाकाव्य मे स्वभावत ही विभि न रसा का वणन अनिवायत रहता है, और यह भी स्वाभाविक ही है कि उनमे एक प्रकार का तारतम्य तथा अगागित्व हो । जिस प्रकार अनेक कथाओ के रहत हुए एक कथा की आधिकारिकता अनिवाय हे अथवा यह कहना चाहिए कि घटना-बाहुल्य के रहते हुए भी समस्त कथा विधान की एक घटना मे परिणति अनिवाय है और अनेक पात्रो के समारोह मे एक पात्र की नायकता असदिग्ध है, इसी प्रकार अनेक रसो के मिश्रण मे एक रम की अगिता भी स्वय सिद्ध है। विरोधियो का तक यह है कि रस तो उसी का नाम है जो स्वय चमत्कार-रूप हे। यदि उसकी स्व चमत्कार रूप मे विश्रा ति नही होती ह, तो वह रस ही नही है। अगागी भाव अथवा उपकाय उपकारक भाव मानने मे तो अग-भूत या उपकारक रस की स्व-चमत्कार मे विश्रा ति नही हो सकती है, अत. वह रस नही कहला सकता हे। रस वह तभी होगा जब स्व-चमत्कार मे ही उसकी विश्रा ति हो जाय। उस दशा म वह किसी दूसरे का अग नही हो सकता है। इसलिए रसो मे अगागी भाव सभव नही हे।—(हि दी ध्व या-लोक, पृ० ३२०)। कि तु ये विद्वान भी अनेक-रस-सम्प न प्रब ध-काव्य मे तारतम्य का निषेध नही कर सकते और तारतम्य की स्वीकृति के उपरा त प्रकारान्तर से अगागी भाव की स्वीकृति भी अनिवाय हो जाती हे, अन्यथा घटना और प्रभाव की अन्विति का निषेध होता ह। वास्तव मे ये विरोधी आचाय भी रसो के स्थान पर स्थायी भावो का, प्रत्यक्ष रूप से, और रसो का, परम्परा या लक्षणा से, अगागित्व स्वीकार कर ही लेते है। इसीलिए आन दवधन और अभिनवगुप्त आदि शास्त्र नायको ने पारिभाषिक तर्को

और शब्दों के फेर म न पडकर स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि महाकाव्य मे एक रस अगी रूप से प्रधानतया व्याप्त रहता है और शेष सचारी रूप से अगभूत होकर उसका पोषण करते ह।[1] उनकी इस स्थापना का आधार है भरत का निम्न श्लोक—

बहूना समवेताना रूप यस्य भवेदबहु।
स म तव्यो रस स्थायी शेषा सचारिणो मता ॥

(भ० ना०, ७ १२०)

अर्थात महाकाव्य मे एकत्र अनेक रसो मे से जो बहु, अर्थात अधिक या प्रधान रूप मे विद्यमान रहता है वह रस स्थायी या अगी और शेष रस सचारी या अगभूत होते ह। अभिनवगुप्त ने इसी सदर्भ म एक प्राचीन आचार्य भागुरि मुनि का उल्लेख किया है जो रसो के अगागी भाव के समर्थक थे—**तथा च भागुरिरपि किं रसानामपि स्थायीसचारितास्तीति आक्षिप्याभ्युपगमेनवोत्तरमवोचद बाढमिति।**

अगी रस के लक्षण

१ उपर्युक्त विवेचन के आधार पर भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार अगी रस का लक्षण है—बहुव्याप्ति।[2] महाकाव्य मे अभिव्यक्त नाना रसो म से जो रस कथानक के कलेवर मे सर्वाधिक व्याप्त हो, वही अगी रस है। महाकाव्य के रस विधान मे उसकी स्थिति वही होती है जो रस परिपाक मे स्थायी भाव की। जिस प्रकार रस के परिपाक मे सचारी भाव उन्मग्न और निमग्न होकर स्थायी भाव का पोषण करते है, उसी प्रकार महाकाव्य मे अन्य अगभूत रस अगी रस को समृद्ध करते है।

१ **प्रसिद्धेऽपि प्रबन्धाना नानारसनिबन्धने।**
एको रसोऽङ्गीकर्तव्य ॥ (ध्वन्यालोक, ३।२१)

अर्थात्, प्रबन्ध काव्यो मे नाना रसो का समावेश प्रसिद्ध होने पर भी उनम से एक रस का अगी रूप मे नियोजन करना चाहिए।

२ **प्रबन्धेषु प्रथमतर प्रस्तुत सन पुन पुनरनुसधीयमानत्वेन स्थायी यो रस —** (ध्वन्यालोक, ३।२२ वृत्ति)

अर्थात, प्रबन्धो मे प्रथम प्रस्तुत और बार बार अनुसहित होने से जो रस स्थायी है ।

२ इसमे सन्देह नही कि उपर्युक्त शास्त्रीय लक्षण अत्यन्त प्रामाणिक है, किन्तु अनिश्चय की स्थिति मे कभी कभी रस निर्णय के लिए यह पर्याप्त नही होता। इसलिए कुछ सहायक लक्षणो की भी आवश्यकता पड जाती है। एक सहायक लक्षण तो यह हो सकता है कि अगी रस मे मुख्य पात्र की—पुरुष अथवा नारी, जो भी कथा का नयन करे, उसकी—मूल वृत्ति का प्रतिफलन रहता है। तत्त्व रूप मे प्रबन्ध काव्य का सम्पूर्ण विस्तार नायक की जीवन साधना का ही [illegible] रूप होता है। जिस प्रकार जीवन साधना के दो पक्ष है—कर्म और भाव, इसी प्रकार कथानक के भी दो पक्ष है—घटना और भाव और इन दोनो पक्षो का सचालन करती है नायक के चरित्र की मूल वृत्ति। यही मूल वृत्ति कर्म [illegible] घटना और फल गम का निर्धारण करती है और भाव पक्ष मे [illegible] या अगी रस का।

३ इसी तर्क परम्परा के अनुसार अगी रस का [illegible] लक्षण यह बनता है कि अगी रस मूल उद्देश्य या फलागम का आस्वाद रूप होता है या दूसरे शब्दो मे, सारभूत प्रभाव का अभिव्यजक होता है। वास्तव मे जैसा कि प्रसादजी ने आचार्य शुक्ल द्वारा निम्नतर रस कोटि की स्थापना के विरोध मे लिखा है फल का निर्णय अन्वय और व्यतिरेक, दोनो पद्धतियो से फल योग के आधार पर ही होता है। पाश्चात्य काव्यशास्त्र मे भी सारभूत प्रभाव को निर्णायक तत्त्व के रूप मे स्वीकार किया गया है। सम्पूर्ण महाकाव्य का भावन करने के उपरान्त जिस स्थायी मन स्थिति का निर्माण होता है, काव्यास्वाद की दृष्टि से वही प्रमुख है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक आलोचक आई० ए० रिचर्ड स ने काव्यास्वाद की अन्तिम परिणति इस प्रकार की मन स्थिति (एटीट्यूड) के रूप मे ही मानी है।

कामायनी मे अनेक रसो का वर्णन

महाकाव्य होने के कारण कामायनी मे स्वभावत ही जीवन की विविध दशाओ का वर्णन और उसके परिणामस्वरूप नाना रसो की अभिव्यजना है। श्रद्धा और मनु के प्रणय-प्रसगो मे शृगार के सयोग पक्ष का दृप्त वर्णन है। 'स्वप्न' सर्ग मे श्रद्धा का विरह और वात्सल्य है, और उधर 'चिन्ता' सर्ग मे देवताओ के विलास मे भी सयोग शृगार का उद्दाम चित्रण है जो करुण का पोषक है। प्रलय के चित्र भयानक रस से आप्लावित है। 'सघर्ष'

स । के अतगत मनु ओर प्रजा के सघष तथा रुद्रकोप म वीर ओर रौद्र, मनु द्वारा शिव ताण्डव के दशन तथा 'रहस्य' सग म अदभुत का परिपाक है, पशु की हत्या के प्रसग मे बीभत्स की झलक है, अनेक स्थलो पर 'चिता' तथा निर्वेद' सर्गो मे निर्वेदमूलक शा त है और अ त मे आन दपूण साम रस्य मे व्यापक अथ मे शा त की सिद्धि हे। बहुव्याप्ति लक्षण के अनुसार स्पष्टत इनमे से केवल दो ही रस एस रह जाते ह जिनके अगित्व की सभा वना हो सकती है—शृगार और शा त अ य सभी रस एकदेशीय हे। कि तु शृगार और शा त के विषय मे भी कम कठिनाई नही हे। शृगार के विषय मे बाधा यह हे कि इसका वणन अधिकतर पूर्वाद्ध मे ही हे, उत्तराद्ध म श्रद्धा के स्व न म विप्रलम्भ शृगार की झलक मात्र ही मिलती है और इडा के प्रति मनु का पणय निवेदन तो रस की अपेक्षा रसाभास के अधिक निकट पडता हे। उत्तराद्ध म क्रमश शृगार का तिरोभाव होता जाता हे और पर्यवसान की अवस्था मे जो भाव रह जाता हे, वह शृगार नही है। ऐसी स्थिति म शृगार को अगी रस मानना सम्भव नही है। शा त का लक्षण सस्कृत काव्यशास्त्र मे दो प्रकार से किया गया है एक निर्वेदमूलक शा त और दूसरा शममूलक शा त। कामायनी के 'चिता' तथा 'निर्वेद' आदि सर्गो मे, जहा अनि य एव दु खमय ससार के प्रति मनु की विरक्ति या निर्वेद का वणन है निवदमूलक शा त हे। कि तु मनु की वह विरक्ति वास्तव मे बद्धावस्था की ही अभिव्यक्ति हे—कामायनी के जीवन दशन का वह केवल पूवपक्ष है जिसका प्रयोग व्यतिरेक पद्धति से आन दवाद को सिद्ध करने के लिए किया गया है। अत निर्वेदमूलक शान्त के अगित्व की कल्पना कामायनी मे असम्भव हे। अब रह जाता है शममूलक शा त जिसका लक्षण इस प्रकार है—

न यत्र दु ख न सुख न चि ता, न द्वेषरागौ न च काचिदिच्छा ।
रस स शा त कथितो मुनी द्र सर्वेषु भावेषु शम प्रधान ।।

अर्थात, "जिसम न दु ख हो, न सुख हो, न कोई चि ता हो, न राग द्वेष हो और न कोई इच्छा ही शेष हो, उसे मुनि शा तरस कहते है।"

कामायनी की परिसमाप्ति यदि 'रहस्य' सग के अ त मे—

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो,
इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे।

दिव्य अनाहत पर निनाद में,
श्रद्धायुत मनु बस तमय थे ॥ (रहस्य, पृ० ५३)

के साथ ही हो जाती, तो उपर्युक्त शममूलक शात रस की कल्पना सगत होती, किंतु जिस आग्रह के साथ प्रसाद ने 'रहस्य' सग के उपरान्त माधुय मडित 'आनद' सग की रचना की है, उसके साथ शात रस के प्रस्तुत रूप की भी सगति नही बठती—क्योकि यह रूप भी तो बहुत कुछ अभावात्मक ही हे। सक्षेप मे शात रस के विषय म काव्य शास्त्र की तीन प्रमुख मान्यताएँ हे—

(१) ससार की अनित्यता एव दु खमयता से उत्पन्न निर्वेद इसका स्थायी भाव हे। (मम्मट हिदी काव्यप्रकाश, आचाय विश्वेश्वर कृत व्याख्या, प० १३८)

(२) शम इसका स्थायी भाव है और निर्वेद सचारी। शम का लक्षण है—**शमो निरीहावस्थायामान द। स्वात्मविश्रामादिति।** अर्थात, "निरीहावस्था मे आत्मविश्रान्तिजन्य आनन्द का नाम शम हे।' (काव्यप्रदीप—काव्यमाला—त० स०, प० ९१)

(३) श्रृगार इसका विरोधी रस है।

इनमे से (१) और (३) तो स्पष्टत कामायनी मे शात रस के अगित्व के विरुद्ध पडते है। कामायनी मे ससार को अनित्य एव दु खमय नही, वरन 'चिति का विराट वपु मगल' और 'सत्य, सतत, चिर सुन्दर' माना गया है। इसके अतिरिक्त श्रृगार कामायनी का अगी नही, तो अत्यत प्रमुख रस अवश्य है—उसका प्राय सम्पूण पूर्वार्द्ध श्रृगार से परिव्याप्त है और यह श्रृगार भी अत्यत दृप्त है। ऐसी स्थिति मे शात का अगित्व कैसे सिद्ध हो सकता हे? दूसरी मान्यता वास्तव मे काव्यशास्त्र की अपेक्षा दशन के अधिक निकट है, वह स्पष्टत ही अभिनव की दाशनिक प्रतिपत्तियो से प्रभावित है। आत्मविश्रातिजन्य आनन्द शात का ही नही, रस मात्र का स्वरूप है। अभिनवगुप्त ने इसी आधार पर शान्त को ही मूल रस माना हे—

स्व स्व निमित्तमासाद्य शातादभाव प्रवतते।
पुनर्निमित्तापाये च शात एवोपलीयते ॥

(नाटयशास्त्र, काव्यमाला, द्वि० स०, प० १०४)

अथात, "अपने अपने निमित्त कारणो को प्राप्त कर शान्त से ही अय भाव आविभूत होते हे और फिर निमित्तो के नष्ट होने पर शा त मे ही विलीन हो जाते है।"

यह वस्तुत शैव रस कल्पना हे जिसका अभिनव के माध्यम से भारतीय काव्यशास्त्र पर गहरा प्र ाव पडा हे। कि तु इसके अनुसार शान्त नवरस का एक भेद मात्र न होकर मूल रस हे, अ य तथाकथित रस सचारियो के समान इसी से आविभूत होते हे ओर अ तत इसी मे तिरोभूत हो जाते हे

भावा विकारा रत्याद्या शा तस्तु प्रकृतिमत ।
विकार प्रकृतेर्जात पुनस्तत्रव लीयते ॥

(ना० शा० काव्यमाला, द्वि० स०, पृ० १०४)

अथात "रति आदिक स्थायी भाव विकार है और शान्त मूल प्रकृति है। ये विकार प्रकृति से उत्प न होकर उसी म विलीन हो जाते है।"

कहने का अभिप्राय यह हे कि काव्यशास्त्र मे शा त रस की कल्पना दो रूपो म की गई है—रस भेद के रूप मे और मूल रस के रूप मे। रस भेद के रूप मे निर्वेद ओर शम दोनो के आधार पर उसका रूप एकागी ओर बहुत कुछ अभावात्मक ही रहता है। तृष्णा क्षय का सुख भी वास्तव म अभावात्मक ही हे, कामायनी मे प्रतिपादित शव दशन की आनन्द कल्पना को वह अपने मे अ तभुक्त नही कर सकता। मूल रस के अथ मे वह शव रस कल्पना का ही प्रतिरूप है जो काव्यशास्त्रीय रूढ शा त रस से भि न ह।

वस्तुत कामायनी का अगी रस यही मूल रस है। प्रसाद की अपनी रस-कल्पना भी सवथा इसी के अनुकूल है क्योकि उसका आधार भी शैवाद्वत ही है। प्रसाद के रस विवेचन से उद्धृत निम्नलिखित वाक्य इसके स्पष्ट प्रमाण है—

१ आन दवधन भी काश्मीर के थे और उ होने वहा के आगमानुयायी आन द सिद्धा त के रस को तार्किक अलकार मत से सम्बद्ध किया। कि तु माहेश्वराचाय अभिनवगुप्त ने इ ही की व्याख्या करते हुए अभेदमय आन दपथ वाले शवाद्वतवाद के अनुसार साहित्य मे रस की व्याख्या की। नाटको के स्वरूप तो उनके सिद्धा त और दाशनिक पक्ष के अनुकूल ही थे। अभिनवगुप्त ने अपनी 'लोचन' नाम की टीका मे स्पष्ट ही लिखा है—

तदुत्तीणत्वे तु सव परमेश्वराद्वय ब्रह्मेत्यस्मच्छास्त्रानुसरणेन विदित त आलोकग्र थे विचारयेत्यास्ताम।

२ अभिनवगुप्त ने रस की व्याख्या मे आन द सिद्धा त की अभिनेय काव्य वाली परम्परा का पूण उपयोग किया। शिवसूत्रो मे लिखा है—**नत्तक आत्मा, प्रेक्षकाणीन्द्रियाणि।** इन सूत्रो मे अभिनय को दाशनिक उपमा के रूप मे ग्रहण किया गया है। शवाद्वैतवादियो ने श्रुतियो के आन दवाद को नाट्य-गोष्ठियो मे प्रचलित रक्खा था, इसलिए उनके यहा रस का साम्प्रदायिक प्रयोग होता था—**विगलितभेदसस्कारमान दरसप्रवाहमयमेव पश्यति** (क्षेमराज)। इस रस का पूण चमत्कार समरसता मे होता है। **अभिनवगुप्त ने नाटय रसो की व्याख्या में उसी अभेदमय आन द रस को पल्लवित किया।**

३ भट्टनायक ने साधारणीकरण से जिस सिद्धान्त की पुष्टि की थी, अभिनवगुप्त ने उसे अधिक स्पष्ट किया। उ होने कहा कि वासनात्मकतया स्थित रति आदि वृत्तिया ही साधारणीकरण द्वारा भेद विगलित हो जाने पर आनन्दस्वरूप हो जाती है। उनका आस्वाद ब्रह्मास्वाद के तुल्य होता है—**परब्रह्मास्वादसब्रह्मचारित्वम वास्त्वस्य रसस्य** (लोचन)।

४ वासनात्मक रूप से स्थित रति आदि वत्तियो मे ब्रह्मास्वाद की कल्पना साहित्य मे महान परिवतन लेकर उपस्थित हुई। रति आदि कई वत्तिया स्थायी मानी जा चुकी थी, किन्तु आलोचक एक आत्मा की खोज मे थे। रस को अपनाकर वे कुछ द्विविधा मे पड गए थे। आन दवादियो की यह व्याख्या उन सब शकाओ का समाधान कर देती थी। उनके यहा कहा गया है—**लोकान द समाधिसुखम** (शिवसूत्र १८)। क्षेमराज उसकी टीका म कहते है—**प्रमातपदविश्रान्ति अवधाना तश्चमत्कारमयो य आनन्द एतदेव अस्य समाधिसुखम**। इस प्रमातपद विश्रान्ति मे जिस चमत्कार या आन द का, लोकसस्था आन द के नाम से सकेत किया गया है, वही रस के साधारणीकरण मे प्रकाशान दमय सवित विश्रान्ति के रूप मे नियोजित था। इन आलोचको का यह सिद्धान्त स्थिर हुआ कि चित्तवृत्तियो की आत्मान द मे तल्लीनता समाधि सुख ही है।

५ साहित्य मे भी इस दाशनिक परिभाषा को मान लेने से चित्त की स्थायी वृत्तियो की बहुसख्या का कोई विशेष अथ नही रह गया। सब वृत्तियो

अर्थात्, "अपने अपने निमित्त कारणो को प्राप्त कर शान्त से ही अन्य भाव आविभूत होते है और फिर निमित्तो के नष्ट होने पर शान्त मे ही विलीन हो जाते हे।"

यह वस्तुत शव रस कल्पना हे जिसका अभिनव के माध्यम से भारतीय काव्यशास्त्र पर गहरा प्रभाव पडा हे। कि तु इसके अनुसार शान्त नवरस का एक भेद मात्र न होकर मूल रस हे, अन्य तथाकथित रस सचारियो के समान इसी से आविभूत होते हे ओर अन्तत इसी मे तिरोभूत हो जाते है

भावा विकारा रत्याद्या शान्तस्तु प्रकृतिमत ।
विकार प्रकृतेर्जात पुनस्तत्रव लीयते ॥

(ना० शा० काव्यमाला, द्वि० स०, पृ० १०४)

अथात "रति आदिक स्थायी भाव विकार हे और शान्त मूल प्रकृति है। ये विकार प्रकृति से उत्पन्न होकर उसी मे विलीन हो जाते है।'

कहने का अभिप्राय यह है कि काव्यशास्त्र मे शान्त रस की कल्पना दो रूपो म की गई ह—रस भेद के रूप मे और मूल रस के रूप मे। रस भद के रूप मे निर्वेद ओर शम दोनो के आधार पर उसका रूप एकागी ओर बहुत कुछ अभावात्मक ही रहता हे। तष्णा क्षय का सुख भी वास्तव म अभावात्मक ही है, कामायनी मे प्रतिपादित शव दशन की आनन्द कल्पना का वह अपने मे अन्तभुक्त नही कर सकता। मूल रस के अथ मे वह शव रस कल्पना का ही प्रतिरूप हे जो काव्यशास्त्रीय रूढ शान्त रस से भिन्न ह।

वस्तुत कामायनी का अगी रस यही मूल रस है। प्रसाद की अपनी रस-कल्पना भी सवथा इसी के अनुकूल है क्योकि उसका आधार भी शवाद्वत ही है। प्रसाद के रस विवेचन से उद्धत निम्नलिखित वाक्य इसके स्पष्ट प्रमाण है—

१ आनन्दवधन भी काश्मीर के थे और उन्होने वहा के आगमानुयायी आनन्द सिद्धान्त के रस को तार्किक अलकार मत से सम्बद्ध किया। किन्तु माहेश्वराचाय अभिनवगुप्त ने इन्ही की व्याख्या करते हुए अभेदमय आनन्दपथ वाले शवाद्वैतवाद के अनुसार साहित्य मे रस की व्याख्या की। नाटको के स्वरूप तो उनके सिद्धान्त और दाशनिक पक्ष के अनुकूल ही थे। अभिनवगुप्त ने अपनी 'लोचन नाम की टीका म स्पष्ट ही लिखा है—

तदुत्तीणत्वे तु सव परमेश्वराद्वय ब्रह्मेत्यस्मच्छास्त्रानुसरणेन विदित तन्त्रालोकग्रन्थे विचारये यास्ताम।

२ अभिनवगुप्त ने रस की व्याख्या मे आनन्द सिद्धान्त की अभिनेय काव्य वाली परम्परा का पूण उपयोग किया। शिवसूत्रो मे लिखा है—**नत्तक आत्मा, प्रेक्षकाणीन्द्रियाणि।** इन सूत्रो मे अभिनय को दाशनिक उपमा के रूप मे ग्रहण किया गया है। शैवाद्वैतवादियो ने श्रुतियो के आनन्दवाद को नाटय-गोष्ठियो मे प्रचलित रक्खा था, इसलिए उनके यहा रस का साम्प्रदायिक प्रयोग होता था—**विगलितभेदसस्कारमानन्दरसप्रवाहमयमेव पश्यति** (क्षेमराज)। इस रस का पूण चमत्कार समरसता मे होता है। **अभिनवगुप्त ने नाटय रसो की व्याख्या में उसी अभेदमय आनन्द रस को पल्लवित किया।**

३ भट्टनायक ने साधारणीकरण से जिस सिद्धान्त की पुष्टि की थी, अभिनवगुप्त ने उसे अधिक स्पष्ट किया। उन्होने कहा कि वासनात्मकतया स्थित रति आदि वृत्तिया ही साधारणीकरण द्वारा भेद विगलित हो जाने पर आनन्दस्वरूप हो जाती है। उनका आस्वाद ब्रह्मास्वाद के तुल्य होता है—**परब्रह्मास्वादसब्रह्मचारित्वम वास्त्वस्य रसस्य** (लोचन)।

४ वासनात्मक रूप से स्थित रति आदि वृत्तियो मे ब्रह्मास्वाद की कल्पना साहित्य मे महान् परिवतन लेकर उपस्थित हुई। रति आदि कई वत्तियाँ स्थायी मानी जा चुकी थी, किन्तु आलोचक एक आत्मा की खोज मे थे। रस को अपनाकर वे कुछ द्विविधा मे पड गए थे। आनन्दवादियो की यह व्याख्या उन सब शकाओ का समाधान कर देती थी। उनके यहाँ कहा गया है—**लोकानन्द समाधिसुखम** (शिवसूत्र १८)। क्षेमराज उसकी टीका मे कहते है—**प्रमातपदविश्रान्ति अवधाना तच्चमत्कारमयो य आनन्द एतदेव अस्य समाधिसुखम्।** इस प्रमातपद विश्रान्ति मे जिस चमत्कार या आनन्द का, लोकसस्था आनन्द के नाम से सकेत किया गया है, वही रस के साधारणीकरण मे प्रकाशानन्दमय सवित् विश्रान्ति के रूप मे नियोजित था। इन आलोचको का यह सिद्धान्त स्थिर हुआ कि चित्तवृत्तियो की आत्मानन्द मे तल्लीनता समाधि सुख ही है।

५ साहित्य मे भी इस दाशनिक परिभाषा को मान लेने से चित्त की स्थायी वृत्तियो की बहुसख्या का कोई विशेष अथ नही रह गया। सब वृत्तियो

का प्रमातृपद, अहम् मे विश्रान्ति होना ही पर्याप्त था। अभिनव के आग माचाय गुरु उत्पल ने कहा है—

प्रकाशस्यात्मविश्रान्तिरहम्भावो हि कीर्तित ।

प्रकाश का यहा तात्पय है चत य। यह चेतना जब आत्मा मे ही विश्रान्ति पा जाय, वही पूण अहभाव है। साधारणीकरण द्वारा आत्म चैतन्य का रसानुभूति मे, पूण अहपद मे, विश्रान्ति हो जाना ही आगमो की दाश निक सीमा है।

६ साहित्यदपणकार की रस व्यारया मे भी उ ही लोगो की शब्दा वली है—

स्वत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशान दचि मय । इत्यादि

यह रस बुद्धिवादियो के पास गया, तो धीरे धीरे स्पष्ट हो गया कि रस के मूल मे चतन्य की भि नता को अभेदमय करने का तत्त्व है। फिर तो चमत्कारापरपर्याय अनुभवसाक्षिक रस को पण्डितराज जग नाथ ने आगमवादियो की ही तरह **'रसो व स , रस ह्येव लब्ध्वान दी भवति'** के प्रकाश मे आन द ब्रह्म ही मान लिया।

(काव्यकला तथा अ य निब ध, चतुथ सस्करण, प० ७५-७७)

उपयुक्त विवेचन का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित निष्कष प्राप्त होते है—

१ भारतीय काव्यशास्त्र मे रस के विषय मे दो प्रमुख दृष्टिकोण रहे है एक शैवागम से प्रभावित आन दवादी दष्टिकोण और दूसरा शास्त्र से प्रभावित बुद्धिवादी दृष्टिकोण। आन दवधन से पडितराज जग नाथ पयन्त आचार्यो को प्रसादजी बुद्धिवादी ही मानते है।

२ आन दवादी आचाय, जिनमे अभिनव प्रमुख है, एक ही अभेदमय आन दरस को मूल रस मानते है। इनके अनुसार वासना रूप से स्थित रति आदि सभी वृत्तिया साधारणीकरण द्वारा भेदविगलित हो जाने पर आन द रूप हो जाती है। इसलिए चित्त की स्थायी वत्तियो और उन पर आश्रित रसो की बहुसरया का कोई विशेष अथ नही रह जाता।

३ चित्तवृत्तियो की आत्मान दमयी तल्लीनता ही रस है और वही समाधिसुख है, अत रस और ब्रह्मास्वाद मे मौलिक भेद नही है।

४ बुद्धिवादी आचार्यो ने भी रस तत्त्व की व्यारया मे शैवाद्वैत के इस

अभेदमय आनन्द-सिद्धान्त को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से ग्रहण किया है। यद्यपि वे अपनी शास्त्रीय परम्परा के अनुसार बहुरस कल्पना का मोह नही छोड सके, फिर भी रस को अखण्ड एव ब्रह्मास्वाद-सहोदर मानकर नाना रसो मे अनुस्यूत आत्मानन्द रूप एक रस कल्पना के बिना उनका काम नही चला।

५ कहने की आवश्यकता नही कि प्रसाद की आस्था शैवागम के आनन्द रस से प्रभावित इसी एकरस सिद्धान्त मे थी। रस के नानात्व के स्थान पर उसकी मौलिक एकता ही तत्त्वत उन्हे मान्य थी।

इस विश्लेषण के प्रकाश मे कामायनी के अगी रस का निणय सरल हो जाता है। कामायनी मे अनेक रस है, किन्तु वे शैवागम की साम्प्रदायिक शब्दावली मे 'आनन्द रस' और अभिनवगुप्त की शास्त्रसम्मत शब्दावली मे, तात्त्विक अथ मे, 'शान्त रस' के विकार मात्र ह। अत कामायनी का अगी रस आनन्द रस, या व्यापक एव मौलिक अथ मे शान्त रस ही है। जसा कि उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है, अभिनव प्रतिपादित शान्त शवागम के आनन्द रस का ही पर्याय है—काव्यशास्त्र मे रूढ शान्त रस मे उसे सीमित करना अभिनव की दाशनिक पाश्व भूमिका के विरुद्ध होगा, प्रसाद की चिन्तन परम्परा के प्रतिकूल होगा और कामायनी के प्रतिपाद्य तथा स्वरूप के भी प्रतिकूल होगा। जिस प्रकार कामायनी के तत्त्व दशन मे अभेद-कल्पना का आग्रह है, उसी प्रकार उसके रस दशन मे भी। ऐसी स्थिति मे, काव्यशास्त्र के रूढ अथ मे, कोई एक रस भेद, चाहे वह पूर्वार्द्ध का शृगार हो या उत्तरार्द्ध का शान्त, अगि-रस पद का अधिकारी नही हो सकता।

इस प्रकार आनन्द रस या व्यापक शान्त रस को अगी रस मान लेने पर सभी समस्याओ का समाधान सहज हो जाता है। इस रस का स्वरूप इतना व्यापक और परिपूण है कि इसमे शान्त और शृगार का विरोध नही है, वस्तुत शृगार और शान्त इसकी दो कोटिया ह। स्वय प्रसाद के शब्दो मे, "शैवागम के आनन्द सम्प्रदाय के अनुयायी रसवादी रस की दोनो सीमाओ, शृगार और शान्त, को स्पश करते थे। भरत ने कहा है—

भावा विकारा रत्याद्या शान्तस्तु प्रकृतिमत ।
विकार प्रकृतेर्जात पुनस्तत्रैव लीयते ॥

यह शान्त रस निस्तरग महोदधि कल्प समरसता ही है।"

(काव्य कला तथा अन्य निबध, पृ० ७८)

कामायनी के पूर्वार्द्ध मे शृगार और उत्तरार्द्ध मे शा त क प्राधा य का यही रहस्य है। पूर्वार्द्ध के उद्दाम शृगार का उत्तरार्द्ध के शा त मे निलय सामा य काव्यशास्त्रीय ग्रथ मे सभव नही है, क्योकि शृगार शा त का विरोधी रस है शान्तस्तु वीर शृगाररौद्रहास्यभयानक (साहित्यदपण, ३।२४६फ) अथात शान्त का वीर, शृगार, रौद्र, हास्य और भयानक से विरोध है। पर यहा तो शृगार और शान्त दोना परस्पर विरोधी न होकर सामरस्य रूप आनन्द या शा त रस की दो सीमाएँ हे।

अगी रस के सभी लक्षण इस रस पर नैसर्गिक रीति स घटित हो जाते ह। कामायनी मे यही रस सवव्याप्त ह—शृगार आदि सभी रस इसी के विकार हे और अ तत इसी मे लीन हो जाते हे। कामायनी की प्रमुख पात्र है श्रद्धा—जो अभेद रूपा विश्वासमयी रागात्मिका प्रवत्ति की प्रतीक हे। उसकी मूल प्रवत्ति सामरस्यमयी ही हे—उसका सम्पूण जीवन 'भेद मे अभेद की साधना के लिए' समर्पित हे। कामायनी के नायक मनु फलागम के रूप मे इसी सामरस्य का भोग करते ह। और अ त म, सारभूत प्रभाव के रूप मे, पाठक भी इसी को ग्रहण करता हे—अर्थात कामायनी का सारभूत प्रभाव शृगारमय तो हे ही नही, शान्तिमय भी नही हे। कामायनी की अ तिम पक्तिया इस प्रकार ह—

समरस थे जड या चेतन,
सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती,
आनन्द अखण्ड घना था। (आनन्द, पृ० २९४)

वास्तव मे काव्य के सदभ मे रस का ग्रहण दो रूपो मे किया जाता है एक विषयगत रूप मे और दूसरे सहृदयगत रूप मे। विषयगत रूप से अभिप्राय है कवि निबद्ध विभावानुभावव्यभिचारिसयोग का, सहृदयगत रूप से अभिप्राय हे सहृदय के आस्वाद का—और य दोनो रूप निश्चय ही परस्पर सम्बद्ध है। कामायनी के अगी रस के प्रसग मे भी ये दोनो रूप ही हमारे सामने आते है। विषयगत रूप मे कवि निबद्ध विभाव, अनुभाव, व्यभिचारी और स्थायी प्रधानत अभेदमय सामरस्य से ही सम्बद्ध है। सहृदयगत रूप मे प्रमाता भी अन्तत इसी सामरस्य का आस्वादन करता

है। किन्तु यहा शका होती ह कि सामरस्य तो आध्यात्मिक सिद्धि है, सम रस आत्मा ही उसका आस्वादन कर सकती है—रागद्वेष मे लिप्त जन-सामान्य के लिए वह कैसे सम्भव है ? इसका उत्तर दर्शन और (काव्य) मनोविज्ञान दोनो के प्रकाश मे दिया जा सकता है। शैव दर्शन एव भारतीय रस सिद्धान्त के प्रमुख व्याख्याता अभिनवगुप्त तथा कामायनी के रचयिता प्रसाद की दार्शनिक चिन्तन परम्परा के अनुसार, रसास्वाद की अवस्था मे प्रमाता वीतविघ्न होकर जिस आत्मविश्रान्ति का भोग करता है, वह सामरस्य ही तो ह। रस दशा निश्चय ही अभेदरूप सामरस्य की दशा है, चाहे वह क्षणिक ही क्यो न हो। दर्शन की पारिभाषिक शब्दावली को हटा दिया जाय तो यह धारणा सामान्य अनुभव से बहुत दूर नही पडती, क्योकि आधुनिक आलोचनाशास्त्र भी यह मानता है कि रसास्वाद की स्थिति मे प्रमाता का चित्त राग द्वेष से मुक्त हो जाता ह। शुक्लजी ने जिसे 'हृदय की मुक्तावस्था' और आई० ए० रिचर्ड्स ने जिसे 'मनो वृत्तियो का समीकरण' कहा है, वह मन स्थिति कुछ इसी प्रकार की है, यद्यपि उसमे आनन्द के उद्रेक पर इतना बल नही दिया गया। मनो विज्ञान की दृष्टि से भी उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर स्पष्ट है काव्य का आस्वाद प्रत्यक्ष भावास्वाद से भिन्न है। जिस प्रकार प्रमाता शृगार रस के आस्वादन मे रति भाव के प्रत्यक्ष रूप का नही वरन् उसके कल्पनात्मक रूप का अनुभव करता है, उसी प्रकार कामायनी का रसानुभव भी वह सामरस्य के प्रत्यक्ष अनुभव के रूप मे नही वरन कल्पनात्मक रूप मे ही करता है।

अत कामायनी का अगी रस भारतीय रस सिद्धान्त का आधारभूत आनन्द रस ही है जिसका दूसरा नाम मौलिक अर्थ मे शान्त भी है। यही कामायनी के वस्तु विधान, प्रतिपाद्य तथा रूप विधान के अनुकूल है। यही प्रसाद के काव्य दर्शन के अनुकूल है, जिसके अनुसार काव्य, आत्मा की सकल्पात्मक अभिव्यक्ति का नाम है—शृगार, शान्त आदि काव्यशास्त्रीय रस-विकल्पो की अपेक्षा सकल्पात्मक आनन्द रस की ही सगति उपर्युक्त काव्य लक्षण के साथ ठीक बठती है।

कामायनी के रूपक तत्व की व्याख्या करने मे पूर्व दो प्रश्नों का उत्तर देना अनिवार्य हो जाता है—

१ रूपक मे क्या अभिप्राय है ? और २ कामायनी रूपक है भी या नहीं ?

रूपक के हमारे साहित्य शास्त्र मे दो अर्थ है। एक तो साधारणत समस्त दृश्य काव्य को रूपक कहते है, दूसरे रूपक एक साम्यमूलक अलकार का नाम है जिसमे अप्रस्तुत का प्रस्तुत पर अभेद आरोप रहता है। इन दोनो से भिन्न रूपक का तीसरा अर्थ भी है जो अपेक्षाकृत अधुनातन अर्थ है और इस नवीन अर्थ मे रूपक अग्रेजी के 'एलिगरी' का पर्याय है। 'एलिगरी' एक प्रकार के कथा रूपक को कहते है। इस प्रकार की रचना म प्राय एक द्वयर्थक कथा होती है जिसका एक अर्थ प्रत्यक्ष और दूसरा गूढ होता है। हमारे यहा इस प्रकार की रचना को प्राय 'अन्योक्ति' कहा जाता था। जायसी के पद्मावत के लिए आचार्य शुक्ल ने इसी शब्द का प्रयोग किया है। रूपक के इस नवीन अर्थ मे वास्तव मे सस्कृत के रूपक और अन्योक्ति दोनो अलकारो का योग है। इसमे जहा एक ओर साधारण अर्थ के अतिरिक्त एक अन्य अर्थ—गूढार्थ—रहता है, वहा अप्रस्तुत अर्थ का प्रस्तुत अर्थ पर श्लेष, साम्य आदि के आधार पर अभेद आरोप भी रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि रूपक अलकार मे जहा प्राय एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर अभेद आरोप होता है वहा कथा रूपक म एक कथा का दूसरी पर अभेद आरोप होता है। वहा भी एक कथा प्रस्तुत और दूसरी अप्रस्तुत रहती है। प्रस्तुत कथा स्थूल, भौतिकघटनामयी होती है और अप्रस्तुत कथा सूक्ष्म सैद्धान्तिक होती है। यह सैद्धान्तिक कथा दार्शनिक, नैतिक, राजनीतिक, सामाजिक वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक आदि किसी प्रकार की हो सकती है, परन्तु इसका अस्तित्व मूर्त नही होता। वह प्राय प्रस्तुत कथा का अन्य अर्थ ही होता है जो उसमे ध्वनित होता है, किसी

प्रब-ध काव्य की प्रासगिक कथा की भाति जुडा हुआ नही होता।

इस प्रकार, इस विशिष्ट अथ मे रूपक से तात्पय एक ऐसी द्व्यथक कथा से हे जिसमे किसी सद्धा तिक अप्रस्तुताथ अथवा अ याथ का प्रस्तुत अथ पर अभेद आरोप रहता है।

अतएव, 'क्या कामायनी रूपक हे ?'—इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमे यह देखना है कि क्या कामायनी की कथा मे प्रस्तुताथ के साथ किसी सद्धा तिक अप्रस्तुताथ की अन्तर्धारा भी वतमान हे। इस प्रश्न के उत्तर का सकेत प्रसादजी ने स्वय कामायनी के आमुख मे दिया है

"आय साहित्य मे मानवो के आदि पुरुष मनु का इतिहास वेदो से लेकर पुराण और इतिहासा म बिखरा हुआ मिलता हे। इसलिए ववस्वत मनु को ऐतिहासिक पुरुप ही मानना उचित है। × ×

'यदि श्रद्धा और मनु अथात मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक हे तो भी बडा भावमय और श्ला-य है। यह मनुष्यता का मनोवज्ञानिक इतिहास बनने मे समथ हो सकता हे। × ×

"यह आरयान इतना प्राचीन है कि इतिहास मे रूपक का भी अदभुत मिश्रण हो गया हे। इसलिए मनु, श्रद्धा और इडा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, साकेतिक अथ की भी अभिव्यक्ति करे, तो मुझे कोई आपत्ति नही। मनु अर्थात मन के दोना पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्ब-ध ऋमश श्रद्धा और इडा से भी सरलता से लग जाता है। इन सभी के आधार पर कामायनी की सष्टि हुई है।"

इसका अभिप्राय यह है कि कामायनी को कवि ने मूलत एक ऐतिहासिक काव्य के रूप मे ही लिखा है, पर तु इसकी कथा मे रूपक की सम्भावनाएँ निहित हैं और यदि इसे रूपक भी मान लिया जाय तो कवि को वह अस्वीकाय नही होगा। अर्थात्, मूलरूप से नही, तो गौणरूप से कामायनी म रूपक तत्त्व निश्चय ही वतमान है। कामायनी के पात्रो का प्रतीकमय साकेतिक व्यक्तित्व तथा उसकी मुरय घटनाओ का श्लेषगर्भित गूढाथ दोनो ही इस मत की पुष्टि करते है। अतएव कामायनी मे रूपक-तत्त्व की स्थिति के विषय मे स देह नही किया जा सकता। वह निश्चय ही है, और काफी स्पष्ट है।

कामायनी की व्यक्त कथा मे आदिम पुरुष मनु और उसकी सहचरी

आदिम नारी श्रद्धा के सयोग से मानव सृष्टि के विकास का वर्णन है। अहकार की क्लेशमयी स्थिति से समरसता की आनन्दमयी स्थिति तक, मनोमय कोश से आनन्दमय कोश तक जीव का विकास—उसका अप्रस्तुत पक्ष है। कथा का प्रस्तुत पक्ष ऐतिहासिक पौराणिक है और अप्रस्तुत पक्ष मनोवैज्ञानिक दार्शनिक है, और इस प्रकार दोना पक्षो म निकट सम्बन्ध है जो इस कथा की एक विशेषता है—अन्यथा रूपको म साधारणत इस तरह का निकट सम्बन्ध रहता नही है।

पहले पात्रो को लीजिये। कामायनी के प्रमुख पात्र है—मनु, श्रद्धा और इडा। इनके अतिरिक्त अन्य पात्र है—मनु श्रद्धा का पुत्र कुमार तथा असुर-पुरोहित आकुलि और किलात। काम और लज्जा अशरीरी पात्र है वे मूलत ही साकेतिक है। मनु, जसा कि स्वय प्रसादजी ने लिखा है, मन का—मनोमय कोश मे स्थित जीव का—प्रतीक है। एक स्थान पर व्याकरण मे मनु और मन को एक रूप माना गया है। '**म यते अनेन इति मनु**—जिसके द्वारा मनन किया जाये वह मन है वही मनु है। मन मे अभिप्राय यहा चेतना (Consciousness) का है। उसका मूल लक्षण है अहकार—'म हूँ' की भावना जो अनेक प्रकार के सकल्प विकल्पो मे अपनी अभिव्यक्ति करती रहती है। कामायनी के मनु के व्यक्तित्व का स्थायी आधार निस्सन्देह यही अहकार है

म हूँ, यह वरदान सदश क्यो
लगा गूजने कानो में,
म भी कहने लगा, म रहूँ
शाश्वत नभ के गानो मे।

(आशा, प० २७)

किन्तु सकल कृतियो की सीमा
है हम ही अपनी तो,
पूरी हो कामना हमारी
विफल प्रयास नहीं तो।

(कम, पृ० १३१)

यह जीवन का वरदान मुझे
दे दो रानी अपना दुलार,

केवल मेरी ही चिन्ता का
तव चित्त वहन कर सके भार। (ईर्ष्या, पृ० १४८)

× × ×

यह जलन नही सह सकता म
चाहिए मुझे मेरा ममत्व,
इस पचभूत की रचना मे
म रमण करूँ बन एक तत्त्व। (ईर्ष्या, पृ० १५३)

मननशीलता अर्थात निरन्तर सकल्प विकल्प अहकार के सचारी है। उपनिषदो मे सकल्प विकल्प को मन की प्रजा कहा गया है। प्रथम दर्शन के समय हमारा मनु के इसी मननशील, सकल्प विकल्पमय रूप से साक्षात्कार होता है। मनु के व्यक्तित्व मे आदि से अन्त तक भूत भविष्यत, स्व पर, प्रकृति-परमतत्त्व आदि के चिन्तन और तज्ज य सकल्प विकल्प का प्राधान्य है।

कामायनी की दूसरी प्रमुख पात्र है श्रद्धा। श्रद्धा, प्रसादजी के अपने शब्दो मे, हृदय की प्रतीक है

श्रद्धा हृदय्य याकूत्या श्रद्धया वि दते वसु।
(ऋग्वेद)

कामायनी मे स्थान स्थान पर उसके इस रूप की स्पष्ट प्रतिकृति मिलती है

हृदय की अनुकृति बाह्य उदार
एक लम्बी काया उ मुक्त। (श्रद्धा, पृ० ४६)

वह ग धर्वो के देश मे हृदय सत्ता का सु दर सत्य खोजने के लिए आती है। उसके व्यक्तित्व के मूल तत्त्व है एक ओर सहानुभूति, दया, ममता, मधुरिमा, त्याग तथा क्षमा—और दूसरी ओर अगाध विश्वास, उत्साह, प्रेरणा, स्फूर्ति आदि, जो हृदय के कोमल और सबल पक्षो की विभूतिया है। शुक्लजी ने इसीलिए श्रद्धा को विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति कहा है। श्रद्धा को काम और रति की पुत्री माना गया है और वह इस ससति मे प्रेम कला का स देश सुनाने के लिए अवतरित हुई है

यह लीला जिसकी विकस चली
वह मूल शक्ति थी प्रेम कला,

उनका सदेश सुनाने को

ससृति मे आयी वह अमल। (काम, पृ० ८६)

तीसरी मुख्य पात्र है इडा जो स्पष्टत बुद्धि की प्रतीक है। प्रसादजी ने व्यक्त रूप से उसके व्यक्तित्व का प्रतीकात्मक चित्र अकित किया है

बिखरी अलकें ज्यो तर्क जाल,

भरी ताल। (इडा, पृ० १६८)

उपर्युक्त चित्र मे बुद्धि के तर्क, भौतिक ज्ञान विज्ञान, त्रिगुण आदि सभी तत्त्वो का अवयव रूप मे समावेश कर दिया गया है। वैसे भी उसका चरित्र एकान्त बौद्धिक है। वह हृदय की विभूतियो से वचित व्यवसायात्मिका बुद्धि द्वारा अनुशासित है। जीवन की अखण्डता के स्थान पर वह वर्ग-विभाजन और अभेद के स्थान पर भेद की व्यवस्था करती है।

अब गौण पात्र शेष रह जाते है सबसे पहले श्रद्धा मनु का पुत्र कुमार आता है। उसका कोई विशेष व्यक्तित्व नही है, यहा तक कि उसका नामकरण सस्कार भी नही किया गया। वह नव मानव का प्रतीक है जो अपने पिता मे मननशीलता, माता से श्रद्धा अर्थात हार्दिक गुण और इडा से बुद्धि ग्रहण कर पूर्ण मानवत्व को प्राप्त करता है। असुर पुरोहित आकुलि और किलात आसुरी वृत्तियो के प्रतीक है। ज्यो ही मनु (मन) पाप (हिंसा-यज्ञ) की ओर आकृष्ट होता है, आकुलि किलात (आसुरी वृत्तिया) उसको दुष्प्रेरणा देने के लिए तुरन्त ही उपस्थित हो जाते है और उसे दुष्कर्म मे प्रवृत्त करते है। फिर, जब मनु के विरुद्ध विद्रोह होता है तो वे ही विद्रोहियो के नेता बनकर सामने आते है। इसका अभिप्राय यह है कि आसुरी वृत्तियाँ पहले मन को पाप कर्म मे प्रवृत्त करती हैं, फिर जब उसे इसके लिए कष्ट भोगना पडता है तो ये आसुरी वृत्तिया उलट उसके कष्ट मे योग देती हैं।

इनके अतिरिक्त देव, श्रद्धा का पशु, वृषभ और सोमलता के भी निश्चय ही साकेतिक अर्थ है। देव इन्द्रियो के प्रतीक है। देवो की निर्बाध आत्म-तुष्टि का अर्थ है इन्द्रियो की निर्बाध तुष्टि

अरी उपेक्षा भरी अमरते!

री अतृप्ति! निर्बाध विलास! (चिन्ता, पृ० १२)

श्रद्धा का पशु भी, जिसका नाम तथा जाति आदि का वर्णन तक नही दिया हुआ है, स्पष्टत एक प्रतीक है। वह सहज जीव दया, करुणा—

आधुनिक अ र मे अहिसा—का द्योतक है।

एक माया! आ रहा था पशु अतिथि के साथ,
हो रहा था मोह करुणा से सजीव सनाथ।(वासना, प० ८३)

वृषभ तो भारतीय अनुश्रुति मे अनादि काल से ही धम का प्रतिनिधि माना जाता रहा है

था सोमलता से आवत,
वष धवल धम का प्रतिनिधि। (आन द, प० २७७)

सोम-लता का साकेतिक अथ है भोग। इस प्रकार सोम-लता से आवत वषभ का अथ हुआ भोग सयुत धम, जिसका उत्सग करके मानव चिरान द लीन हो जाता है।

अब तीन चार प्रतीक और रह जाते है—जल प्लावन, त्रिलोक और मानसरोवर। जल प्लावन भारत के ही नही, पथ्वी के इतिहास की अत्य त प्राचीन घटना है। हमारे दशन साहित्य मे प्रतीक रूप मे ग्रहण कर उसका साकेतिक अथ भी किया गया है। जब मानव अबाध इन्द्रिय लिप्सा का दास हो जाता है, अर्थात जब मन ऊपर विज्ञानमय कोश और आन दमय कोश की ओर बढने के स्थान पर निम्नतम अ नमय कोश मे ही रम जाता है, तो चेतना पूणत उस माया मे डूब जाती है।

त्रिलोक मे प्राचीन त्रिपुरदाह के रूपक से प्रेरणा ग्रहण की गई है और इसका प्रतीकाथ अत्य त व्यक्त है। तीन लोक—भाव लोक, कमलोक तथा ज्ञानलोक चेतना की तीन अगभूत प्रवत्तियो—भाव-वत्ति, कम वृत्ति और ज्ञान वृत्ति के प्रतीक है। जब तक ये तीनो वृत्तिया पृथक् पथक् काय करती है मन अशा त और उद्विग्न रहता है

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भि न है,
इच्छा क्यो पूरी हो मन की,
एक दूसरे से न मिल सके,
यह विडम्बना है जीवन की। (रहस्य, पृ० २७२)

परन्तु जब श्रद्धा के द्वारा इनका सम वय हो जाता है तो मन समरसता की अवस्था को प्राप्त कर लेता ह

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो,
इच्छा, क्रिया, ज्ञान मिल लय थे,

दिव्य अनाहत पर निनाद मे,
श्रद्धायुत मनु बस त मय थे। (रहस्य, पृ० २७३)

मानसरोवर, जिसे शतपथ ब्राह्मण मे मनोरवसपण कहा गया है—

तदप्येतदुत्तरस्य गिरेमनोरवसपणमिति

—कलास शिखर पर वह स्थान है जहा मनु श्रद्धा की सहायता से पहुँचते है और अपने मानसिक क्लेश से मुक्ति पाते हे। यह समरसता की अवस्था है—मानसिक सम वय की अवस्था, जहा भाव, कम और ज्ञान मे पूण सामजस्य हो जाना है।

मानसरोवर या मानस (कामायनी मे 'मानस शब्द का प्रयोग है) इसी समरसता की अवस्था का प्रतीक है। यह मानस कलास शिखर पर स्थित है। कलास पवत आन दमय कोश का प्रतीक है।

कामायनी की प्रस्तुत कथा मे मनु की कलास स्थित मानसरोवर यात्रा का वणन है जहा पहुँचकर मनु के समस्त क्लेश दूर हो जाते है। रूपक को हटाकर, यह मन का समरसता की अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न है जिसके उपरा त मन के समस्त भौतिक और आध्यात्मिक क्लेश नष्ट हो जाते हे और वह पूणान दलीन हो जाता है। पारिभाषिक शब्दावली मे यह मनोमय कोश मे स्थित जीव की आन दमय कोश मे स्थित होने के लिए साधना है। यह आन दमय कोश पिण्डाण्डरूप पवत का उच्चतम शिखर कैलास है। कामायनी की रचना के समय यह वदिक रूपक स्पष्टत प्रसादजी के मन मे विद्यमान था।

अपने प्रकृत रूप मे मनु एका त मननशील तथा अहकारी हे। वे अहकारमय निष्क्रिय चिंतन मनन के अतिरिक्त और कुछ नही कर पाते। ज्यो ही काम की प्रेरणा से काम और रति की पुत्री श्रद्धा से मनु का सयोग होता है, उनमे जीवन के प्रति आकषण तथा स्फूर्ति का उदय होता है। श्रद्धा के साहचय से मनु के अहकार का समाजन होता है, वह स्व' से 'पर' की ओर बढता है। बीच बीच मे उनका अहकार उभरता है और आसुरी वत्तियो के प्रतीक आकुलि किलात की सहायता से वे पशु यज्ञ कर सोमरस का प्राप्ति करते है। पर तु श्रद्धा उसका तीव्र विरोध करती है और कम से कम कुछ समय के लिए उ हे उसका अनौचित्य स्वीकार करने के लिए बाध्य करती है। इस प्रकार जब तक मनु श्रद्धा के प्रभाव मे रहते है, उनके अह का

सस्कार होता रहता हे। पर तु यह स्थिति अधिक समय तक नही रहती, मनु का अहकार फिर प्रबल हो जाता हे—

यह जलन नही सह सकता म,
चाहिए मुझे मेरा ममत्व,
इस पचभूत की रचना म,
म रमण करूँ बन एक तत्त्व। (ईर्ष्या, प० १५३)

और वे श्रद्धा से विरत होकर फिर अपने मे खो जाते है। श्रद्धा से विमुख होने पर मनु की वत्तिया पुन अस्त व्यस्त हो जाती ह और वे जीवन-पथ पर भटकते हुए सारस्वत प्रदेश पहुँचते हे। सारस्वत प्रदेश जीव के निम्नतर कोश—प्राणमय कोश—का प्रतीक हे। यहा उनका साक्षात्कार इडा से होता हे जो उ हे बुद्धिवाद की दीक्षा देकर भोतिक जीवन की ओर प्रेरित करती हे—

जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर नर किसकी शरण जाय !

यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वय भरी शोधक विहीन।
तुम उसका पटल खोलने में परिकर कसकर बन कमलीन।
सबका नियमन शासन करते, बस, बढा चलो अपनी क्षमता।
(इडा, प० १७१)

इडा के प्रभाव मे मनु बुद्धि-बल से प्राकृतिक साधनो को एकत्र कर शासन-व्यवस्था करते हे, कम विभाजन होता है, जीवन मे भौतिक सघष का सूत्रपात होता है। मनु इन सबके नियामक हे, कि तु मनु का अहकार इतने से स तुष्ट नही होता, इडा पर भी तो उनका अधिकार होना चाहिए। वे उसके लिए प्रयत्नशील होते है, पर यहा उ ह घोर विफलता होती हे। इस अनधिकार चेष्टा से वे रुद्र के कोप भाजन बनते हे। एक बार फिर प्रलय का सा दृश्य उपस्थित हो जाता हे, मनु का विद्रोही प्रजा के साथ युद्ध होता है जिसमे मनु की पराजय होता है।

इसका सकेत अथ यह हुआ कि मन अपने प्रकृत रूप मे केवल मनन शील तथा अहकारी हे। श्रद्धावान होकर ही, और श्रद्धा का उदय मन मे राग वृत्ति के प्राधा य के कारण ही सम्भव है, उसका उचित दिशा मे विकास-सस्कार होता है। श्रद्धा विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति का नाम

हे। 'श्रद्धा-समवेत' मन मे अपने प्रति विश्वास और जीवन के प्रति राग का उदय होता हे। यो समय समय पर उसके आसुरी सस्कार निश्चय ही उभरेंगे, उसका सहज भोगवाद ऊपर आयेगा, परन्तु जब तक वह श्रद्धावान है, तब तक इन पर नियत्रण रहेगा और उसके अह का सस्कार होता रहगा। परन्तु ज्यो ही मन श्रद्धा को त्याग देगा, वह नीचे प्राणमय कोश मे पहुँच जायेगा और बुद्धि के चक्र मे पड जायेगा। बुद्धि व्यवसायात्मिका वृत्ति हे, वह उसको सघष की निरन्तर प्रेरणा तो दे सकती है, परन्तु सुख नही दे सकती। अहकार का सस्कार करने के स्थान पर वह उसे और भी उत्तेजित करती है। अन्त मे एक स्थिति ऐसी आ जाती है कि मन बुद्धि पर पूण एकाधिकार करने के लिए लालायित हो उठता हे। यहा उसका पूण पराभव होता है और एक प्रकार की मानसिक प्रलय हो जाती है।

इस पराभव के उपरान्त मनु को बडी ग्लानि होती है। इतने मे ही श्रद्धा के साथ उनका फिर सयोग होता है। श्रद्धा उन्हे ग्लानि और क्लेश का परित्याग कर फिर से कमशील होने के लिए उत्साहित करती है। इसी बीच मे उसका साक्षात्कार इडा से होता है। वह पहले तो अति-बुद्धिवादी होने के लिए इडा की भत्सना करती है, अन्त मे उसे क्षमा कर अपने पुत्र कुमार को उसे सोप देती है और आप मनु को साथ लेकर चल देती है। मनु और श्रद्धा दोनो हिमालय के शिखरो पर चढते चढते एक ऐसे स्थान पर पहुँचते है जहा से त्रिदिक् विश्व के तीन पथक ज्योतिष्पिण्ड उन्हे दखायी पडते हैं। श्रद्धा मनु को इनका रहस्य समझाती है—'ये तीन ज्योतिष्पिण्ड भाव-लोक, कम लोक और ज्ञान लोक है। इनके पाथक्य के कारण ही ससार मे विडम्बना फैली हुई है।" ऐसा कहते कहते श्रद्धा की मुस्कान ज्योति-रेखा बनकर इन तीनो लोको मे दौड जाती है। तीनो लोक मिलकर एक हो जाते है, और बस, फिर मनु के मन के क्लेश और विश्व की सारी विडम्बनाओ का अन्त हो जाता है। श्रद्धायुत मनु पूण आनन्द-लीन हो जाते है।

इसका प्रतीकाथ इस प्रकार है—सुखवाद और बुद्धिवाद के अतिचार के फलस्वरूप मन का पूणत पराभूत होना स्वाभाविक ही था। इससे मन को भयकर ग्लानि और निर्वेद होता है और वह फिर जीवन से पलायन करता है। इस स्थिति से श्रद्धा-सयुत मन फिर उचित दिशा की ओर

सस्कार होता रहता हे। पर तु यह स्थिति अधिक समय तक नही रहती, मनु का अहकार फिर प्रबल हो जाता हे—

यह जलन नही सह सकता म,
चाहिए मुझे मेरा ममत्व,
इस पचभूत की रचना म,
म रमण करूँ बन एक तत्त्व। (ईर्ष्या, पृ० १५३)

और वे श्रद्धा से विरत होकर फिर अपने मे खो जाते हे। श्रद्धा से विमुख होने पर मनु की वृत्तिया पुन अस्त व्यस्त हो जाती ह और वे जीवन-पथ पर भटकते हुए सारस्वत प्रदेश पहुँचते हे। सारस्वत प्रदेश जीव के निम्नतर कोश—प्राणमय कोश—का प्रतीक हे। यहा उनका साक्षात्कार इडा से होता हे जो उन्हे बुद्धिवाद की दीक्षा देकर भौतिक जीवन की ओर प्रेरित करती हे—

जो बुद्धि कहे उसको न मानकर फिर नर किसकी शरण जाय !

यह प्रकृति परम रमणीय अखिल ऐश्वय भरी शोधक विहीन।
तुम उसका पटल खोलने मे परिकर कसकर बन कमलीन।
सबका नियमन शासन करते, बस, बढा चलो अपनी क्षमता।
(इडा, पृ० १७१)

इडा के प्रभाव मे मनु बुद्धि-बल से प्राकृतिक साधनो को एकत्र कर शासन व्यवस्था करते हे, कम विभाजन होता है, जीवन मे भौतिक सघष का सूत्रपात होता है। मनु इन सबके नियामक है, किन्तु मनु का अहकार इतने से सन्तुष्ट नही होता, इडा पर भी तो उनका अधिकार होना चाहिए। वे उसके लिए प्रयत्नशील होते हे, पर यहा उन्हे घोर विफलता होती हे। इस अनधिकार चेष्टा से वे रुद्र के कोप भाजन बनते हे। एक बार फिर प्रलय का सा दृश्य उपस्थित हो जाता है, मनु का विद्रोही प्रजा के साथ युद्ध होता है जिसमे मनु की पराजय होता है।

इसका सकेत अथ यह हुआ कि मन अपने प्रकृत रूप मे केवल मनन शील तथा अहकारी हे। श्रद्धावान् होकर ही, और श्रद्धा का उदय मन मे राग वृत्ति के प्राधान्य के कारण ही सम्भव है, उसका उचित दिशा मे विकास-सस्कार होता है। श्रद्धा विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति का नाम

है। 'श्रद्धा-समवेत' मन मे अपने प्रति विश्वास और जीवन के प्रति राग का उदय होता हे। यो समय-समय पर उसके आसुरी सस्कार निश्चय ही उभरेगे, उसका सहज भोगवाद ऊपर आयेगा, परन्तु जब तक वह श्रद्धावान् है, तब तक इन पर नियत्रण रहेगा और उसके अह का सस्कार होता रहेगा। पर तु ज्यो ही मन श्रद्धा को त्याग देगा, वह नीचे प्राणमय कोश मे पहुँच जायेगा और बुद्धि के चक्र मे पड जायेगा। बुद्धि व्यवसायात्मिका वत्ति है, वह उसको सघष की निर तर प्रेरणा तो दे सकती है, पर तु सुख नही दे सकती। अहकार का सस्कार करने के स्थान पर वह उसे और भी उत्तेजित करती है। अ त मे एक स्थिति ऐसी आ जाती हे कि मन बुद्धि पर पूण एकाधिकार करने के लिए लालायित हो उठता है। यहा उसका पूण पराभव होता हे और एक प्रकार की मानसिक प्रलय हो जाती है।

इस पराभव के उपरा त मनु को बडी ग्लानि होती है। इतने मे ही श्रद्धा के साथ उनका फिर सयोग होता है। श्रद्धा उ हे ग्लानि और क्लेश का परित्याग कर फिर से कमशील होने के लिए उत्साहित करती है। इसी बीच मे उसका साक्षात्कार इडा से होता है। वह पहले तो अति-बुद्धिवादी होने के लिए इडा की भत्सना करती है, अन्त मे उसे क्षमा कर अपने पुत्र कुमार को उसे सौप देती है और आप मनु को साथ लेकर चल देती है। मनु और श्रद्धा दोनो हिमालय के शिखरो पर चढते चढते एक ऐसे स्थान पर पहुँचते है जहा से त्रिदिक विश्व के तीन पथक ज्योतिष्पिण्ड उ हे दखायी पडते है। श्रद्धा मनु को इनका रहस्य समझाती है—'ये तीन ज्योतिष्पिण्ड भाव-लोक, कम-लोक और ज्ञान-लोक है। इनके पाथक्य के कारण ही ससार मे विडम्बना फैली हुई है।' ऐसा कहत-कहते श्रद्धा की मुस्कान ज्योति-रेखा बनकर इन तीनो लोको मे दौड जाती है। तीनो लोक मिलकर एक हो जाते है, और बस, फिर मनु के मन के क्लेश और विश्व की सारी विडम्बनाओ का अन्त हो जाता है। श्रद्धायुत मनु पूण आन द-लीन हो जाते है।

इसका प्रतीकाथ इस प्रकार है—सुखवाद और बुद्धिवाद के अतिचार के फलस्वरूप मन का पूणत पराभूत होना स्वाभाविक ही था। इससे मन को भयकर ग्लानि और निर्वेद होता है और वह फिर जीवन से पलायन करता है। इस स्थिति से श्रद्धा सयुत मन फिर उचित दिशा की ओर

विकासशील होता है और एक ऐसी स्थिति मे पहुँच जाता हे जहा उसे आत्म साक्षात्कार हो जाता है। श्रद्धा की प्रेरणा से उसे अपने पराभव का रहस्य स्पष्ट हो जाता है। वह अनुभव करता है कि उसकी विडम्बनाओ का एक मात्र रहस्य यह है कि उसकी तीनो मूल वत्तियो मे सामजस्य नही है। उसकी भाव वत्ति, ज्ञान वृत्ति और कमवृत्ति (to feel, to know, to will) तीनो ही एक दूसरे से पथक रहकर क्रियाशील है। ज्योही श्रद्धा के द्वारा इन तीना का पूण सामजस्य हो जाता हे, मन समरसता की अवस्था प्राप्त कर पूर्णान द मे लीन हो जाता है। यह आन द शैव योगी का आत्मा नन्द है जो अपने भीतर आत्म साक्षात्कार द्वारा प्राप्त होता हे, सगुण भक्त का आन द नही है जो चराचर मे व्याप्त प्रभु के दशन कर प्राप्त होता है। श्रद्धा द्वारा अपने पुत्र कुमार का इडा को सौपना भी इसी सामजस्य का प्रतीक है। मनु और श्रद्धा का आत्मज होने के कारण मानव ज मत मनन शीलता और श्रद्धा से युक्त है। इडा का निरीक्षण उसके बुद्धि तत्त्व को भी परिपक्व कर मानवत्व को पूण कर देता है।

साधारणत कथा का अ त यही होना चाहिए था, परन्तु इस प्रकार इडा, कुमार और सारस्वत प्रदेशवासियो की कहानी अधूरी ही रह जाती। अतएव उसके पयवसानरूप मे इडा, कुमार और सारस्वत-प्रदेशवासियो के भी मानसरोवर जाने का वणन किया गया है, जहा वे सोम लता से मडित वृषभ का उत्सग कर मनु से सामरस्य की दीक्षा लेते है। इसमे सन्देह नही कि मूल कथा से इस प्रसग का सहज सम्ब ध नही है, परन्तु सकेत-अथ इसका भी सवथा स्पष्ट है और वह यह है कि समष्टि-रूप मे भी मानव जीवन की परिणति आन द मे ही है। सोम लता अर्थात भोग और वृषभ अर्थात् धम (कम) का उत्सग कर समरस मानव चिरानन्द मग्न हो जाता है।

इस प्रकार कामायनी निस्सन्देह ही रूपक है। प्रसादजी ने कथा के मूल तत्त्वो को ऐतिहासिक मानते हुए उनके आधार पर ऐतिहासिक महाकाव्य की रचना का उपक्रम किया था। कि तु कथा का साकेतिक रूप उनके मन मे आरम्भ से अ त तक वतमान था और मन के विकास का प्राचीन वदिक रूपक उनको वसे भी अत्य त प्रिय था।

परतु प्रसादजी ने इसे सवथा प्राचीन रूप मे ही ग्रहण नही किया। आधुनिक देश काल का प्रभाव भी उन पर अत्य त व्यक्त है। मनु के जीवन की

विडम्बना आधुनिक जीवन की विडम्बना है। इस विडम्बना का मूल कारण यह है कि आज हमारी भाव वृत्ति अर्थात सस्कृति जिसम धर्म, नतिकता और कला साहित्य आदि आते ह, कर्म वृत्ति अर्थात राजनीति जिसके अतगत आर्थिक व्यवस्था आदि भी समाविष्ट ह और ज्ञान वृत्ति अर्थात दर्शन विज्ञान तीनो एक दूसरे से पृथक ह। उनम सामञ्जस्य न होने से जीवन आन्तरिक और वाह्य सघर्षो और विषमताओ से त्रस्त है। व्यक्तिवादी मनु आधुनिक जीवन के व्यक्तिपरक भौतिक सुखवाद का प्रतीक ह जिसका व्यक्त रूप पूजीवाद मे मिलता है। वह इडा अर्थात विज्ञान की सहायता से जीवन के सम्पूर्ण सुखो को अपने मे केन्द्रित करने का असफल प्रयत्न करता है। अन्त मे वह अनुभव करता है कि श्रद्धा के बिना जीवन की विडम्बना का अन्त नही। यह श्रद्धा अर्थात् रागात्मिका वृत्ति गाधीजी की अहिसा और पाश्चात्य दार्शनिको की मानव भावना की पर्याय है। आज इसी मानव भावना की प्रेरणा से ही इच्छा, ज्ञान, क्रिया अथवा सस्कृति, विज्ञान और राजनीति मे सामजस्य स्थापित हो सकता है। जब इन तीनो के पीछे मानव-भावना की सदप्रेरणा रहेगी, तो इनका समन्वय स्वत ही हो जाएगा। आज के पूजीवाद से पीडित समाज की विडम्बनाओ का समाधान यही मानववाद है जिसका भौतिक रूप समाजवाद और आध्यात्मिक रूप गाधीवाद है।

आधुनिक मनोविश्लेषण शास्त्र के आचार्यो ने भी आज की विषमताओ का यही समाधान बताया है। उनका निदान यह है कि इस युग का मानव अनेक प्रकार के सामाजिक ऐतिहासिक तथा व्यक्त अव्यक्त कारणो से स्वरति की भावना से आक्रान्त है। स्वरति भयकर रोग है जिसके कारण उसका मानसिक स्वास्थ्य सर्वथा नष्ट हो गया है। मानसिक स्वास्थ्य मन की भाव वृत्ति, कर्मवृत्ति और ज्ञान-वृत्ति के समन्वय का नाम है। इसलिए मानसिक स्वास्थ्य के नष्ट होने का अर्थ यह है कि ये तीनो वृत्तिया पृथक् दिशाओ मे क्रियाएँ कर रही है। इस सामजस्य को पुन प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि रति भावना को 'स्व से निकालकर 'पर' की ओर प्रेरित किया जाए। यह उन्नयन प्रक्रिया है, इसके पूर्ण हो जाने पर मन समरसता की अवस्था (Mental equilibrium) को प्राप्त कर लेता है। आज मानव जीवन की समस्या का यही समाधान है।

एक प्रश्न और रह जाता है—यह रूपक कहा तक सगत है? जहा

तक मूल कथा का सम्ब ध है, रूपक सामान्यत सगत और स्पष्ट है, उसमे कोई विशेष सद्धातिक असगति नही है। हा, कथा के सूक्ष्म अवयवो मे सगति पूरी तरह नही बठती। जब मनु मानव मन अथवा मनोमय कोश म स्थित जीव का प्रतीक है तो उसके पुत्र कुमार को नव मानव का प्रतिनिधि मानकर भी सगति नही बठती, क्योकि इस तरह पिता पुत्र मे लगभग एक ही प्रतीकाथ की पुनरावत्ति हो जाती है। प्रसादजी ने इस असगति का अनुभव किया था, इसलिए आन द लोक की यात्रा पर जाने से पूव श्रद्धा कुमार को छोड जाती है। इसी प्रकार सारस्वत प्रदेशवासियो के साथ इडा और कुमार का चिरान दलीन मनु के पास वषभ आदि का उत्सग करन के लिए जाना भी अप्रस्तुताथ मे एक पवद जसा ही है। इसकी सफाई मे दो कारण दिये जा सकते है। एक कारण तो यह है कि प्रस्तुत कथा को पूरी तरह अप्रस्तुताथ म जकड देना ठीक नही है। आखिर प्रस्तुत कथा को थोडा सा तो स्वत त्र अवकाश देना ही चाहिए। दूसरा यह है कि कामायनी की कथा का विकास ही असगतियो से भरा हुआ है, उसमे ही काफी जोड लगे हुए है। अतएव उपयुक्त असगतिया का सम्ब ध बहुत कुछ कथा की असगतियो से भी है। इनके अतिरिक्त आचाय शुक्ल ने दो तात्त्विक असगतियो की ओर सकेत किया है। एक तो यह कि जब इडा की प्रेरणा से ही मनु कम विस्तार करते है अर्थात् जब बुद्धि ही कम व्यापार का कारण है, तो ज्ञान लोक से पथक कम लोक का अस्तित्व किस प्रकार सगत हो सकता है? दूसरे, रति और काम की दुहिता तथा मानव करुणा, सहानुभूति आदि की समानार्थी होने के कारण श्रद्धा की स्थिति शुद्ध भाव की स्थिति है, उसका अस्तित्व एका त भावात्मक है। ऐसी परिस्थिति मे उसकी स्थिति भावलोक से ही नही, वरन भाव, कम, ज्ञान तीनो से परे कसे हो सकती है? इनमे से पहली आपत्ति तो अधिक सगत नही है। वसे तो मानव मन इतना जटिल है कि उसकी सभी वृत्तिया परस्पर अनुस्यूत और गुम्फित है, फिर भी दशन तथा मनोविज्ञान मे इच्छा ज्ञान और क्रिया का भेद तो सवथा स्वीकृत है ही। भारतीय दशन म भक्ति ज्ञान और कम माग का पथक विवेचन प्राय आरम्भ से ही होता आया है। इसलिए कम के पीछे बुद्धि की प्रेरणा होने का यह अभिप्राय नही है कि इन दोनो मे कोई तत्त्वगत पाथक्य ही नही है।

श्रद्धा विषयक आपत्ति अधिक गम्भीर है। साधारण दष्टि से निस्सदेह

ही श्रद्धा एक भाव हे और भाव, ज्ञान और क्रिया के पृथक् वणन के समय भाव से भिन उसका अस्तित्व वास्तव मे समभ मे नही आता। परन्तु प्रसादजी ने कामायनी की सम्पूण कथा की धुरी श्रद्धा को ही बनाया है। श्रद्धा का अथ है—आस्तिकबुद्धि (भावना) आस्तिकबुद्धि इनि श्रद्धा। आस्तिकता का अथ हे—अस्तित्व मे सहज आस्था, इस प्रकार आस्तिक भावना जीवन की एका त मूलगत भावना ह। इसी के द्वारा जीवन का सचालन होता ह। प्रसादजी ने इसे इसी रूप मे ग्रहण किया हे। इसमे स देह नही कि प्रसाद की श्रद्धा मे राग तत्त्व की अत्य त प्रधानता है, पर तु यह स्वाभाविक हे। अस्तित्व मे सहज आस्था स्वभावत ही राग प्रधान होनी चाहिए, जीवन के प्रति सहज आस्था निस्स देह ही रागमयी होनी चाहिए। पर तु फिर भी तत्त्व रूप मे श्रद्धा कोरी भावुकता नही ह, आस्तिकबुद्धि की पयाय होने के कारण उसम अस्तित्व की तीनो अभिव्यक्तियो—इच्छा ज्ञान, क्रिया की स्थिति हे। प्रसादजी ने भी श्रद्धा को कोरी भावुकता के प्रतीक रूप मे चित्रित नही किया, वह वास्तव मे जीवन की प्रेरणा की प्रतीक है। इसके विपरीत, भाव लोक कोरी भावुकता—इच्छा की रगीन क्रीडाओ—का प्रतीक है, और स्पष्ट शब्दो मे, भाव लोक केवल इच्छा का प्रतीक है तथा श्रद्धा जीवन के अस्तित्व मे आस्था अथात विश्वासयुक्त जीवनेच्छा है।

जिसे तुम समझे हो अभिशाप,
जगत् की ज्वालाओ का मूल,
ईश का वह रहस्य वरदान,
कभी मत जाओ इसको भूल।

× × ×

तप नही केवल जीवन सत्य,
करुण यह क्षणिक दीन अवसाद,
तरल आकाक्षा से है भरा,
सो रहा आशा का आह्लाद।

× × ×

एक तुम यह विस्तत भू खड
प्रकृति वैभव से भरा अम द,

कम का भोग, भोग का कम,
यही ज॰ का चेतन आा द।

(श्रद्धा प०५३,५५,५६)

पूव तथा पश्चिम के धम शास्त्रो तथा दशनो मे भी श्रद्धा की यही स्थिति स्वीकार की गई है। धम अथ काम, मोक्ष सभी क लिए श्रद्धा (फेथ) को आधारभूत वत्ति के रूप मे स्वीकार किया गया हे, उसके बिना मोक्ष (परमानन्द) की प्राप्ति सम्भव नही है। मनोविश्लेषण शास्त्र क अनुसार श्रद्धा की स्थिति वही हे जो युग प्रतिपादित जीवन चेतना की, जिसे कि उ होने जीवन की मूल भूत वत्ति माना है। स्वभावत ही वह राग वत्ति (लिबिडो) से अधिक व्यापक है।

इसके अतिरिक्त वस्तु रचना की दृष्टि से भी श्रद्धा की स्थिति का तीनो से स्वत त्र होना आवश्यक था। कामायनी की कथा का काय हे त्रिपुर का एकीकरण, जिसके उपरा त मनु को आन द लोक की प्राप्ति होती है अर्थात कथावस्तु के उद्देश्य की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार प्रस्तुत कथा का काय है भाव वत्ति, कम वत्ति और ज्ञान वत्ति का सम वय। इसके उपरा त ही मन समरसता की स्थिति प्राप्त कर चिरानन्द लीन हो जाता है और कथा का उद्देश्य पूण हो जाता है। वास्तु कौशल की दृष्टि से यह काय मुख्य पात्र के द्वारा ही सम्पादित होना चाहिए और मुख्य पात्र स्पष्टत कामायनी अर्थात् श्रद्धा है। इस प्रकार शुक्लजी की इस दूसरी गम्भीर आपत्ति का भी निराकरण असम्भव नही हे और इसमे सन्देह नही, प्रसादजी ने श्रद्धा की मनोवैज्ञानिक स्थिति की इन सगति असगतियो पर पूणत विचार करने के उपरान्त ही उसको यह रूप दिया था। शुक्लजी द्वारा उठायी गई शका उनके मन मे न उठी हो, यह बात नही मानी जा सकती।

५

कामायनी की दार्शनिक पृष्ठभूमि

इस प्रश्न पर अनुगम और निगमन दोनो विधियो से विचार किया जा सकना हे। अनुगम विधि के अनुसार पहने कामायनी के मूल प्रतिपाद्य का निणय और विवेचन करना होगा और फिर दशनशास्त्र की शब्दावली मे उसका स्वरूप-निरूपण। निगमन विधि से पहले बहि साक्ष्य आदि के द्वारा कामायनी के मूलभूत दशन का निणय करना चाहिए और फिर उसके आधार पर कामायनी के प्रतिपाद्य का विश्लेषण। स्वभावत इन दोनो मे अनुगम विधि ही अधिक मान्य है, क्याकि निगमन विधि मे जहा 'कागद-लेखी' का आश्रय अधिक रहता है, वहा अनुगम विधि 'आखिन देखी' का ही विश्वास करती हे। अनुगम विधि के पक्ष मे एक दूसरा तक और भी दिया जा मकता है। काव्य का दशन, शास्त्र के दशन से भिन्न होता हे। शास्त्र मे दशन के तत्त्व तकगम्य और विचारसिद्ध होते है, किन्तु काव्य मे उन्हे अनुभूति का विषय बनना पडता है। शास्त्र के दशन मे हेतु निगमन दृष्टान्त की एक दृढ शृखला विद्यमान रहती है जिसके आधार पर प्रतिपादित दशन का व्यवस्थित विधान सहज ही प्रस्तुत किया जा सकता है, किन्तु काव्य मे, इसके विपरीत, अनुभव और कल्पना का प्राचुय होने के कारण इस प्रकार की तार्किक व्यवस्था सम्भव नही है—इसलिए किसी नियमित शास्त्रीय विधान की आशा भी नही की जा सकती। अत काव्य गत दशन का निर्धारण करने मे निगमन विधि का विश्वास अधिक नही किया जा सकता, क्योकि उसमे पूव निश्चित सिद्धान्तो के आरोपण या उनके अनुरूप विषय के अनुकूलन की आशका रहती है। प्रत्येक महाकवि द्रष्टा तो अनिवायत होता है और दाशनिक भी प्राय होता है, किन्तु शास्त्रकार नही हो सकता, क्योकि शास्त्र और काव्य की तो प्रकृति ही मूलत भिन्न है। इसी कारण जहा कही भी कवि ने शास्त्र-निरूपण का प्रयत्न किया है वही उसका कवित्व बाधित हो गया है, और जहा कही आलोचक ने किसी कवि मे नियमित शास्त्रीय विधान का अनुसधान करने

की चेष्टा की है वही उसकी विवेचना वस्तुपरक न रह कर आरोपित हो गई है। काव्य का दशन वास्तव मे भावित और व्यजित ही हो सकता है—निरूपण और विवचन के लिए काव्य मे स्थान नही है। एसी स्थिति मे स्पष्ट है कि उसका स्वरूप निर्धारण करने के लिए निगमन विधि अधिक उपादेय नही हो सकती।

अत कामायनी की दाशनिक भूमिका का निरूपण करने के लिए अनुमान विधि का अवलम्बन ही अधिक श्रेयस्कर रहेगा और उसकी पहली आवश्यकता है कामायनी के प्रतिपाद्य का अनुसधान।

कामायनी का प्रतिपाद्य आनन्दवाद

कामायनी की प्रमुख घटना है मनु की मानसरोवर यात्रा, जिसका प्रतीकाथ है मानव मन की आन द साधना। कामायनी के नायक का चरम प्राप्य है आन द—तदनुसार कामायनी म निहित जीवन दशन का चरम साध्य हुआ आन द और कामायनी का मूल प्रतिपाद्य हुआ आन दवाद। यह तक एकदम सीधा है, अत इस विषय मे विवाद के लिए स्थान नही रह जाता। कि तु आनन्द के स्वरूप के विषय मे मतभेद हो सकता है, क्योकि आन द की प्रतिष्ठा तो अनेक दशनो मे हुई है जि होने अपने अपने सिद्धा त के प्रकाश म आन द का स्वरूप-विवेचन किया है।

कामायनी म आन द के जिस रूप की प्रतिष्ठा है, वह स्पष्टत आत्मस्थ है। वह अ तमुख आन द या आत्मान द है—बाह्य, गोचर, विश्व-रूप म प्रसरित आन द नही है। विश्व म माधुय का जो सचार दष्टिगत होता है, वह उसकी ही प्रतिच्छाया मात्र है (आन द सग)। इच्छा, क्रिया और ज्ञान के सामजस्य से सम्पन्न मन स्थिति इसकी भूमिका है, दूसरे शब्दा मे यह आन द सामरस्य का पर्याय है

स्वप्न, स्वाप, जागरण भस्म हो
इच्छा क्रिया ज्ञान मिल लय थे,
दिव्य अनाहत पर निनाद में
श्रद्धायुत मनु बस त मय थे।

(रहस्य, पृष्ठ २७३)

समरस थे जड या चेतन
सुदर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती
आनन्द अखड घना था।

(आनद, पृ० २९४)

इसकी सिद्धि श्रद्धा के द्वारा होती है, इडा प्राप्ति मे बाधक होता है। अर्थात आस्तिक बुद्धि या अभेद भावना इस आनद की साधक है और भेद कल्पना बाधक।

यह आनद स्पष्टत औपनिषदिक परम्परा से प्रभावित शैवाद्वैत प्रतिपादित अभेदमय आत्मास्वाद है जिसमे आत्म और परमात्म के ही नही, वरन आत्म और जगत के भी पूर्ण ऐक्य की भावना निहित है। इस अखण्ड आत्मानुभूति मे द्वयता के लिए कोई स्थान नही है—निम्न की बाह्य द्वयता दुख और सुख की, जड और चेतन की, इस सामरस्य मे अन्तर्लीन हो जाती है

सब भेद भाव भुलवाकर
दुख सुख को दृश्य बनाता,
मानव कह रे ! 'यह मै हूँ'
यह विश्व नीड बन जाता।

(आनन्द, पृ० २८९)

यही शैवाद्वैत मे प्रतिपादित अहम और इदम की अभेद-स्थिति है, परमशिव की चौथी शक्ति 'ईश्वर तत्त्व' मे इदमहम' के द्वारा इसी की अनुभूति होती है।

यहा यह शका हो सकती है कि मनु की दुखमूलक उक्तियो का सामजस्य इस आनन्दवाद के साथ कैसे स्थापित किया जा सकता है ? उदाहरणार्थ—

(१) विस्मृति आ, अवसाद घेर ले,
नीरवते, बस, चुप कर दे।

(चिता, पृ० ६)

(२) मृत्यु अरी ! चिर निद्रे !
तेरा अक हिमानी-सा शीतल !

(चिता, पृ० १८)

(३) जीवन निशीथ के अ धकार ।

(इडा, पृ० १५९, पद १)

इसका उत्तर हे कि यह कामायनी का पूवपक्ष है, सिद्धान्त पक्ष नही। उपर्युक्त उक्तिया मन की आवत अवस्था—पाशव अवस्था की द्योतक हे, शुद्धावस्था की नही। अत अ वय व्यतिरेक से ये आन दवाद की प्रतिष्ठा मे ही सहायक हे क्योकि दु ख की यह स्वीकृति सामरस्य के अभाव और विषमता से प्रेरित हे। सामरस्य की अवस्था मे, दु ख की स्थिति आत्मा के लीलाभिनय रूप जीवन म विदूषक से अधिक नही रहती, जो कुछ क्षणो के लिए परिहासपूण अभिनय कर अ त मे लुप्त हो जाता है —

सुख सहचर दु ख विदूषक,
परिहासपूण कर अभिनय,
सबकी विस्मति के पट म,
छिप बठा था अब निभय।

(आन द, पृ० २८३)

यह आन द अद्वतज य हे, कि तु यह अद्वैत वेदा त प्रतिपादित अद्वैत नही है, शवाद्वत ही हे जो शिव को, मोक्ष को और ससार को भी पूर्णा न दमय मानता है—जिसके अनुसार कही अशिव या निरानन्द के दशन नही होते

विषयेषु च सर्वेषु इ द्रियार्थेषु च स्थितम्।
यत्र तत्र विरूप्येत नाशिव विद्यते क्वचित्॥

अत यह सवथा निर्विवाद है कि कामायनी का आधारभूत दशन शैवाद्वत—काश्मीरी शवदशन—प्रत्यभिज्ञादशन ही है। कामायनी में प्रतिपादित आत्मा, जीव, जगत, आदि के स्वरूप से, उसमे प्रयुक्त प्रचुर पारिभाषिक शब्दावली से और बाह्य साक्ष्य के आधार पर इस स्थापना की सहज ही पुष्टि हो जाती है।

आत्मा का स्वरूप

कामायनी मे आत्मा के लिए चिति, महाचिति, चेतनता आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है और उसे विश्व प्रपच का मूल तत्त्व माना गया है

(१) कर रही लीलामय आनन्द,
'महाचिति' सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी मे सब होते अनुरक्त।

(श्रद्धा, पृ० ५३)

(२) 'चिति' का विराट वपु मंगल,
यह सत्य, सतत, चिर सुन्दर !

(आनन्द, पृ० २८८)

(३) 'चेतनता' एक विलसती,
आनन्द अखण्ड घना था।

(आनन्द, पृ० २६४)

यही परम तत्त्व है—यही परम शिव है, जो अपनी इच्छा से विश्व का लीलामय विस्तार करता है—

काम मंगल से मंडित श्रेय,
सर्ग इच्छा का है परिणाम।

(श्रद्धा, पृ० ५३)

स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति।

(प्रत्यभिज्ञाहृदयम)

यह शिव-रूप आत्मतत्त्व अपनी अविच्छिन्न शक्ति से संयुक्त है, इस प्रकार यह वेदान्त के ब्रह्म से भिन्न स्वप्रकाशानन्द है। अन्ततः मनु इसी आत्मरूप को प्राप्त करते हैं

चिरमिलित प्रकृति से पुलकित,
वह चेतन पुरुष पुरातन,
निज शक्ति तरंगायित था
आनन्द अम्बु निधि शोभन।

(आनन्द, पृ० २८६)

मनु शिव रूप हो जाते हैं और श्रद्धा शक्ति रूप। शैव दर्शन की भाँति कामायनी मे भी शिव और शक्ति की प्रकल्पना आनन्द-सागर और उसकी तरंगावली के रूप मे की गई है—

आा दसागर शम्भु तच्छ्वितद्रव उच्यते।

(बोधसार)

जोव

स्पष्टत कामायनी म जीव या पुरुष के प्रतीक मनु है। मनु आरम्भ मे चिन्ताग्रस्त है, जीवन म प्रविष्ट होकर क्रमश उनमे जीवन की अनित्यता, घोर अकमण्यता, परिस्थिति की परवशता, परिमित भोग-भावना (स्वाथ), अपने और पराये की भेद बुद्धि, अपनी कतृत्वशक्ति का मिथ्याभिमान आदि दोषो का विकास होता हे। इस प्रकार वे निरान द हो जाते है। उपर्युक्त चरित्र दोष शव दशन की शब्दावली मे काल, कला, नियति, राग और विद्या आदि कचुको की प्रकल्पना से प्रभावित है, इसम स देह नही। 'इडा' सग म '**सकुचित असीम अमोघ शक्ति**!' पद मे काम का अभिशाप इस तथ्य का, स्पष्टत पारिभाषिक शब्दावली मे ही, उद्घाटन करता है।

शुद्ध रूप	**लक्षण**	**कचुक**	**अशुद्ध रूप**
शिव	चित् (नित्यत्व)	काल	अनित्यता (समय)
शक्ति	आन द (स्वात न्य या व्यापकता)	नियति	परत त्रता या देश
सदाशिव	इच्छा (पूणत्व)	राग	अपूण अहता
ईश्वर	ज्ञान (सवज्ञत्व)	विद्या	सीमित ज्ञान
सद्विद्या	क्रिया (सवकत त्व)	कला	किचित्कत त्व

(थियोस बनाड की 'हि दू फिलासफी' के आधार पर, पृ० १४१)

यह आत्मा की बद्धावस्था अर्थात पशुस्थिति है जब वह तीन मलो और छह कचुको से आवृत हो जाता है। कामायनी के पूवाध मे मनु को इसी रूप मे अकित किया गया है—निर्वेद-सग तक आणव स्थिति (भेद बुद्धि का प्राधान्य), निवद से रहस्य सग तक शाक्त स्थिति (भेद और अभेद दोनो का प्राधान्य) और तदुपरान्त शाभव स्थिति (केवल अभेद भावना) को प्राप्त करते है जहा जीव की जागत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओ को पार कर वे चतुर्थावस्था—तुरीयावस्था—मे पहुँच जाते है। इसके उपरा त तुरीयातीत अवस्था है—पूण शिवत्व की।

जगत्

कामायनी के पूर्वार्ध मे जगत की असत्यता दु खमयता आदि के विषय मे मनु के अनेक उद्गार प्राप्त होते है। परन्तु जैसा कि हमने अभी स्पष्ट किया, वे मन की आवृत अवस्था के द्योतक है, अत वे सिद्धान्त पक्ष के अन्तर्गत नही आते। श्रद्धा सर्ग मे पहली बार प्रस्तुत विषय का सिद्धान्त कथन है। विषादग्रस्त मनु का यह विचार था कि जीवन जडता की राशि है—निराशा ही इसका परिणाम है, दीन जीवन का सगीत निरतर तिमिर के गर्भ मे बढता जा रहा है (पृ० ४६)। किन्तु श्रद्धा इसका निराकरण करती हुई आत्म-विश्वास के साथ उत्तर देती है

कर रही लीलामय आनन्द
महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम,
इसी मे सब होते अनुरक्त।
काम मगल से मडित श्रेय,
सर्ग इच्छा का है परिणाम।
(श्रद्धा पृ० ५३)

कामायनी के वस्तु विधान से यह स्पष्ट है कि मनु का पक्ष पूर्व पक्ष है और श्रद्धा का पक्ष आरम्भ से ही उत्तर पक्ष या सिद्धान्त पक्ष रहा है—मनु प्रश्न है और श्रद्धा उत्तर

एक था यदि प्रश्न, तो उत्तर द्वितीय उदार। (वासना, पृ० ८१)

अत श्रद्धा के शब्दो मे कामायनी के जगत सम्बन्धी विचारो की प्रथम प्रामाणिक अभिव्यक्ति है अर्थात यह ससार महाचिति की लीलामयी अभिव्यक्ति है—अतएव मूलत ही यह मगलमय, श्रेयस्कर और आनन्दमय है, इसके प्रति अनुराग स्वाभाविक है। आणव स्थिति मे होने के कारण मनु इस मगल रहस्य को नही समझ पाते और वे जीवन एव जगत को निस्सार मानते हुए निरन्तर भटकते रहते है। परन्तु अन्त मे श्रद्धा के ससर्ग से स्वस्थ स्थिरचित्त हो जाने पर—पारिभाषिक शब्दावली मे शाम्भव स्थिति मे पहुँच जाने पर वे भी इस सत्य को प्राप्त कर लेते है —

अपने दुख सुख से पुलकित,
यह मूर्त विश्व सचराचर,

'चिति' का विराट वपु मगल,
यह सत्य, सतत, चिर सु दर ।

(पृ० २-८)

यही स्पष्टत शवाद्वत म प्रतिपादिन विश्व का स्वरूप है जहा उसे शिव का शरीर मानते हुए आन दमय घोपित किया गया ह

त्वमेव स्वात्मान परिणमयितु विश्ववपुषा ।

(सौ दयलहरी)

शव दशन के अनुसार यह विश्व शिव या चिति से अभि न है—वही अपनी इच्छा से अभि न रूप मे इसका उ मेष करती हे ।

चेतनो हि स्वात्मदपण भावान प्रतिबिम्बवद आभासयति इति सिद्धान्त ।

(अभिनवगुप्त)

ससार विषयक यह मा यता शुद्ध शव सिद्धा त पर आश्रित है और वेदा त के अद्वैत से भि न हे । इसे शवागमो म आभासवाद, अभेदवाद आदि के नाम से अभिहित किया गया हे । इसके अनुसार जगन् का ईश्वर के साथ अभेद या आभास सम्ब ध हे, काय कारण सम्ब ध नही है । इस विश्वप्रपच के विकास के प्रसग म शवमत मे शिव से लेकर धरणि पय त ३६ तत्त्वो की कल्पना की गई है । इनमे प्रथम पाच तो परमेश्वर की शक्ति के विकसित रूप हे, आगे माया से लेकर नियति तक षट कचुक ह, और अन्त मे पुरुष से लेकर पचभूत तक शेष २५ तत्त्व सारयादि के समान ही हे । कामायनी मे इन तत्त्वो का अनुसधान करना कठिन नही है—रहस्य सग मे मनु क्रमश 'नियति', 'काल' आदि से मुक्त होकर शुद्ध रूप की ओर बढते हे और आन द सग मे प्रथम पाच तत्त्वो की ओर भी सकेत मिल जाते हे । इसी प्रकार भावलोक के वणन म पच ज्ञानेन्द्रियो और त मात्राओ का तथा कम लोक के वणन मे पचकर्मेन्द्रियो का उल्लेख है और आशा-सग के अ तगत सष्टि के विकास क्रम मे पचभूत का । इसमे सदेह नही कि यह वणन व्यवस्थित और क्रमिक नही है कि तु काव्य के कलेवर मे उसकी उपेक्षा भी नही की जा सकती, और जितना हुआ है वह भी कवित्व का मूल्य देकर ही हुआ हे ।

अन्य प्रमाण

कामायनी मे प्रयुक्त प्रचुर पारिभाषिक शब्दावली इस निष्कर्ष की पुष्टि मे निश्चयपूर्वक सहायक होती है। कामायनी के प्राय प्रत्येक सर्ग से, विशेषकर उत्तरार्द्ध के 'दर्शन', 'रहस्य' और 'आनन्द आदि सर्गो से, ऐसे अनेक उद्धरणो का सकलन किया जा सकता है जिन पर शैवागमो के सूत्रो की छाप स्पष्ट है। इनमे से कुछ एक का उल्लेख उपयुक्त प्रसगो मे हो ही चुका है। इसके अतिरिक्त 'रहस्य' सर्ग मे वर्णित त्रिकोण और दर्शन' सर्ग मे निरूपित शिवताण्डव भी इसी तथ्य का पोषण करते है—ये दोनो ही शैव मत के अत्यन्त प्रसिद्ध प्रतीक है।

बहिःसाक्ष्य के अन्तर्गत प्रसाद के अनेक लेखो से प्रमाण दिये जा सकते हैं। 'काव्य और कला', 'रहस्यवाद' तथा 'रस' आदि लेखो मे प्रत्यभिज्ञा दर्शन की असदिग्ध स्वीकृति है और उधर 'इरावती मे भी इसी का स्वर अत्यन्त मुखर हो गया है—

"जिसकी दुःख ज्वाला मे मनुष्य व्याकुल हो जाता है, उस विश्व चित्त मे मगलमय नटराज-नृत्य का अनुकरण आनन्द की भावना, महाकाल की उपासना का बाह्य स्वरूप है। और साथ ही कला की, सौन्दर्य की, अभिवृद्धि है, जिससे हम बाह्य विश्व मे सौन्दर्य-भावना को सजीव रख सके है। परन्तु अब हमे फिर से इसके लिए बल और स्फूर्तिदायक प्राचीन आर्य-क्रियाओ का पुनरुद्धार करना होगा। इस बौद्धिक दम्भ के अवसाद को आर्य जाति से हटाने के लिए आनन्द की प्रतिष्ठा करनी होगी। समझे!"

(इरावती च० स०, पृ० २२)

और अन्त मे प्रसाद की अपनी जीवन चर्या भी इसी तथ्य का समर्थन करती है। उनके परिवार मे परम्परा से काश्मीरी शैव दर्शन के प्रति आस्था चली आ रही थी और प्रसाद की अपनी निष्ठा भी उसमे सर्वथा अटल एव बद्धमूल थी। अत यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि कामायनी का आधारभूत दर्शन आनन्दवादी शैवाद्वैत ही है।

अन्य दर्शनो का प्रभाव

शैवाद्वैत के अतिरिक्त अन्य दर्शनो का भी प्रभाव प्रसाद की चिन्ता-धारा पर सामान्यत और कामायनी की वैचारिक भूमिका पर विशेष रूप

'चिति का विराट वपु मगल,
यह सत्य, सतत, चिर सु दर ।
(पृ० २-८)

यहा स्पष्टत शवाद्वत म प्रतिपादित विश्व का स्वरूप है जहा उसे शिव का शरीर मानते हुए आन दमय घोषित किया गया हे

त्वमेव स्वात्मान परिणमयितु विश्ववपुषा ।
(सौ दयलहरी)

शव दशन के अनुसार यह विश्व शिव या चिति स अभि न हे—वही अपनी इच्छा से अभि न रूप मे इसका उ मेष करती हे ।

चतनो हि स्वात्मदपण भावान प्रतिबिम्बवद आभासयति इति सिद्धा त ।
(अभिनवगुप्त)

ससार विषयक यह मा यता शुद्ध शव सिद्धा त पर आश्रित है और वेदा त के अद्वत से भि न हे । इसे शवागमो म आभासवाद, अभेदवाद आदि के नाम से अभिहित किया गया हे । इसके अनुसार जगत् का ईश्वर के साथ अभेद या आभास सम्ब ध हे काय कारण सम्ब ध नही है । इस विश्वप्रपञ्च के विकास के प्रसग म शवमत म शिव से लेकर धरणि पय त ३६ तत्त्वो की कल्पना की गई है । इनमे प्रथम पाच तो परमेश्वर की शक्ति के विकसित रूप हे, आगे माया से लेकर नियति तक षट कचुक है, और अ त मे पुरुष से लेकर पचभूत तक शेष २५ तत्त्व साख्यादि के समान ही हे । कामायनी म इन तत्त्वो का अनुसधान करना कठि न नही हे—रहस्य सग म मनु क्रमश 'नियति , 'काल' आदि से मुक्त होकर शुद्ध रू की ओर बढते हे और आन द सग म प्रथम पाच तत्त्वो की ओर भी सकेत मिल जाते है । इसी प्रकार भावलोक के वणन म पच ज्ञानेन्द्रियो और त मात्राओ का तथा कम-लोक के वणन मे पचकर्मेन्द्रियो का उल्लेख है और आशा-सग के अ तगत सष्टि के विकास क्रम म पचभूत का । इसमे सदेह नही कि यह वणन व्यवस्थित और क्रमिक नही है, कि तु काव्य के कलेवर मे उसकी उपेक्षा भी नही की जा सकती, और जितना हुआ है वह भी कवित्व का मूल्य देकर ही हुआ हे ।

अन्य प्रमाण

कामायनी मे प्रयुक्त प्रचुर पारिभाषिक शब्दावली इस निष्कष की पुष्टि मे निश्चयपूवक सहायक होती है। कामायनी के प्राय प्रत्येक सग से, विशेषकर उत्तराद्ध के 'दशन', 'रहस्य' और 'आनन्द आदि सर्गों से, ऐसे अनेक उद्धरणो का सकलन किया जा सकता है जिन पर शवागमो के सूत्रो की छाप स्पष्ट है। इनमे से कुछ-एक का उल्लेख उपर्युक्त प्रसगो मे हो ही चुका है। इसके अतिरिक्त 'रहस्य' सग मे वर्णित त्रिकोण और दशन' सग मे निरूपित शिवताण्डव भी इसी तथ्य का पोषण करते है—ये दोना ही शव मत के अत्यन्त प्रसिद्ध प्रतीक हैं।

बहि साक्ष्य के अन्तर्गत प्रसाद के अनेक लेखो से प्रमाण दिये जा सकते हैं। 'काव्य और कला', 'रहस्यवाद' तथा 'रस आदि लेखो मे प्रत्यभिज्ञा दशन की असदिग्ध स्वीकृति हे और उधर 'इरावती' मे भी इसी का स्वर अत्यन्त मुखर हो गया है—

"जिसकी दु ख-ज्वाला मे मनुष्य व्याकुल हो जाता हे, उस विश्व-चित्त मे मगलमय नटराज-नृत्य का अनुकरण आनन्द की भावना, महाकाल की उपासना का बाह्य स्वरूप है। और साथ ही कला की, सौन्दय की, अभिवृद्धि है, जिससे हम बाह्य विश्व मे सौन्दय-भावना को सजीव रख सके है। परन्तु अब हमे फिर से इसके लिए बल और स्फूर्तिदायक प्राचीन आय-क्रियाओ का पुनरुद्धार करना होगा। इस बौद्धिक दम्भ के अवसाद को आय जाति से हटाने के लिए आनन्द की प्रतिष्ठा करनी होगी। समझे!"

(इरावती च० स०, पृ० २२)

और अन्त मे प्रसाद की अपनी जीवन चर्या भी इसी तथ्य का समथन करती है। उनके परिवार मे परम्परा से काश्मीरी शैव दशन के प्रति आस्था चली आ रही थी और प्रसाद की अपनी निष्ठा भी उसमे सवथा अटल एव बद्धमूल थी। अत यह निर्विवाद रूप से सिद्ध हो जाता है कि कामायनी का आधारभूत दशन आनन्दवादी शवाद्वत ही है।

अन्य दशनो का प्रभाव

शैवाद्वत के अतिरिक्त अन्य दशनो का भी प्रभाव प्रसाद की चिन्ता-धारा पर साभिव्यक्त और कामायनी की वचारिक भूमिका पर विशेष रूप

से लक्षित होता है। उदाहरण के लिए, बौद्ध दशन के क्षणवाद, शून्यवाद, दु खवाद और इनसे प्रभावित मध्ययुगीन नियतिवाद आदि की प्रतिध्वनि उनके नाटको तथा कामायनी मे अनेक स्थानो पर मिलती है—

शून्यवाद— मौन नाश विध्वस अँधेरा,
शून्य बना जो प्रकट अभाव,
वही सत्य है अरी अमरते,
तुझको यहा कहा अब ठाव !

(चिता, प० १८)

क्षणवाद— जीवन तेरा क्षुद्र अश है,
व्यक्त नील घनमाला में,
सौदामिनी सधि सा सुन्दर,
क्षण भर रहा उजाला में।

(चिता, पृ० १९)

तुच्छ नहीं है अपना सुख भी,
श्रद्धे, वह भी कुछ है,
दो दिन के इस जीवन का तो,
वही चरम सब कुछ है।

(कम, पृ० १३०)

देखा क्या तुमने कभी नही,
स्वर्गीय सुखो पर प्रलय नत्य,
फिर नाश और चिर निद्रा है,
तब इतना क्यो विश्वास सत्य।

(ईर्ष्या, पृ० १४८) आदि।

इसी प्रकार वतमान वज्ञानिक चिताधाराओ के अनेक सिद्धान्त भी कामायनी मे स्थग्न स्थान पर प्रतिध्वनित हे। उदाहरण के लिए, विकास-

वाद और उसके अगभूत परिवर्तनवाद[1], परमाणुवाद,[2] शक्तिस्पर्धावाद[3]

१ विश्व एक ब धनविहीन परिवर्त्तन तो है,
इसकी गति मे रवि शशि तारे ये सब जो हैं—
रूप बदलते रहते, वसुधा जलनिधि बनती,
उदधि बना मरुभूमि जलधि में ज्वाला जलती।
तरल अग्नि की दौड लगी है सब के भीतर,
गल कर बहते हिम नग सरिता लीला रचकर
यह स्फुलिग का नृत्य एक पल आया बीता।
टिकने को कब मिला किसी को यहा सुभीता ?
(सघष, पृ० १६०)

२ वह मूल शक्ति उठ खडी हुई,
अपने आलस का त्याग किये,
परमाणु बाल सब दौड पडे
जिसका सुदर अनुराग लिये।
कुकुम का चूण उडाते से,
मिलने को गले ललकते-से,
अन्तरिक्ष के मधु उत्सव के
विद्युत्कण मिले झलकते-से।
वह आकषण, वह मिलन हुआ,
प्रारम्भ माधुरी छाया में,
जिसको कहते सब सष्टि, बनी
मतवाली अपनी माया में।
प्रत्येक नाश विश्लेषण भी,
सश्लिष्ट हुए, बन सृष्टि रही,
ऋतुपति के घर कुसुमोत्सव था,
मादक मरद की वृष्टि रही।
(काम, पृ० ७२-७३)

३ यह नीड मनोहर कृतियो का,
यह विश्व कर्म-रगस्थल है,

आदि। डार्विन के विकासवाद का कामायनी पर गहरा प्रभाव हे। मानव-मन के विकास के माध्यम से मानव सभ्यता के विकास निरूपण मे प्रसाद की कल्पना ने विकासवाद के सिद्धा तो से प्रभाव और प्रेरणा ग्रहण की है। सष्टि के विकास क्रम मे आरम्भ म एक रूपाकारहीन विराट कुहामण्डल की कल्पना और फिर क्रमश विद्युत्कण और परमाणुओ के सश्लेषण के द्वारा प्रकृति के नाना रूपो की अवतारणा, उधर मनु के मनोविकास मे द्वन्द्व की मूल प्रेरणा और मनोविज्ञान मे निरूपित, स्थूल से सूक्ष्म की आर अग्रसर, विभि न विकास अवस्थानो की स्वीकृति, 'उत्तम का अस्तित्व सिद्धा त के आधार पर कृषि, उद्योग आदि क्रम से भौतिक सभ्यता के विकास का वणन, आदि—प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से—विकासवाद के सिद्धा त से प्रभावित है। विकासवाद के इसी व्यापक प्रभाव के कारण कवि प त न कामायनी के प्रति यह आक्षेप किया हे कि उसका आधारभूत जीवन दशन विकासवाद पर ही समाप्त हो जाता हे आधुनिक जीवन के नवीन यथाथ तथा चत य को अभिव्यक्ति नही दे पाता।[1]

ये सभी विचार और सिद्धा त अ वय-व्यतिरेक शली से शवाद्वत के पोषक होकर ही आये है। प्रसादजी ने प्रस्तुत स दभ मे सम्भावित शका का

> है परम्परा लग रही यहा
> ठहरा जिसमें जितना बल हे।
> (काम, पृ० ७५)
>
> स्पर्धा मे जो उत्तम ठहरें, वे रह जावें।
> ससति का कल्याण करें, शुभ माग बतावे॥
> (सघष, पृ० १६२)

१ वह केवल आधुनिक युग के विकासवाद से काल्पनिक एव मनोवैज्ञानिक स्तर पर प्रेरणा ग्रहण कर तथा अध्यात्म की दृष्टि से वही चिर प्राचीन व्यक्तिवादी विकसित एव समरस नित्य आन न चत य का आरोहणमूलक आदश उपस्थित कर भारतीय पुनजागरण के काव्य-युग की अन्तिम स्वर्णिम परिच्छेद की तरह समाप्त हो जाती है। (गद्यपथ, पृ० १६२)

समाधान इस प्रकार किया हे "रस म फलयाग या अन्तिम सर्ग व मुख्य है × × × × × बीच के व्यापारो से, जो सचारी भावो के प्रतीक ह, रस को खोजकर उसे छिन-भिन कर देना हे। अवय और व्यतिरेक—दोना प्रकार से वस्तु निर्देश किया जाता है।" (काव्य-कला तथा अय निब ध—स० ५, प० ८३)। वास्तव म जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका ह, दु खवाद ओर क्षणवाद आदि पूवपक्ष मात्र हैं—इनका प्रयोग कामायनी मे व्यतिरेक रूप म हुआ है। उधर विकासवाद और उमके अगभूत परमाणु वाद आदि वज्ञानिक सिद्धातो का प्रयोग अवय रूप मे हुआ है, क्योकि जीव और सष्टि के विकास के ये सिद्धात, प्राकृत धरातल पर, शवाद्वत प्रतिपादित आत्म विकास के पोषक ही है।

ऐतिहासिक दष्टि से प्रसाद ने भारतीय चिताधारा क आधारभूत दो मौलिक दशनो का विवेचन किया है एक तरुण आर्यों द्वारा गहीत आत्म वाद जिसकी पूण प्रतिष्ठा शव आनन्दवाद मे हुई, और दूसरा व्रात्यो द्वारा स्वीकृत बुद्धिवाद, जिसका विकास बौद्धो आर जनो के अनात्मवाद मे हुआ—भक्ति भी इसी का सशोधित रूप है। इनम से पहला दशन स्वस्थ प्रसन जाति का जीवन-दशन हे और दूसरा पतनोमुख हीनवीय जाति का

"सप्तसिधु के प्रबुद्ध तरुण आर्यों ने इस आनद वाली धारा का अधिक स्वागत किया। क्योकि वे स्वत्व के उपासक थे। और वरुण यद्यपि आर्यों की उपासना मे गौण रूप से सम्मिलित थे, तथापि उनकी प्रतिष्ठा असुर के रूप मे असीरिया आदि अय देशो मे हुई। आत्मा मे आनद भाग का भारतीय आर्यो ने अधिक आदर किया। उधर असुर के अनुयायी आय एकेश्वरवाद और विवेक के प्रतिष्ठापक हुए। भारत के आर्यों ने कमकाण्ड और बडे बडे यज्ञो मे उल्लासपूण आनद का ही दश्य देखना आरम्भ किया और एकात्मवाद के प्रतिष्ठापक इद्र के उद्देश्य से बडे बडे यज्ञा की कल्पनाएँ हुइ। किंतु इस आत्मवाद और यज्ञ वाली विचार धारा की वैदिक आर्यों मे प्रधानता हो जाने पर भी, कुछ आर्य लोग अपने को उस आय-सघ मे दीक्षित नही कर सके। वे व्रात्य कहे जाने लग। वैदिक धम की प्रधान धारा मे, जिसके अन्तर म आत्मवाद था और बाहर याज्ञिक क्रियाओ का उल्लास था, व्रात्यो के लिए स्थान नही रहा। उन व्रात्या ने अत्यन्त प्राचीन

अपनी चैत्यपूजा आदि के रूप मे उपासना का क्रम प्रचलित रखा और दाशनिक दष्टि से उ होने विवेक के आधार पर नये नये तर्का की उद्भावना की। × × × × ×वष्णि सघ व्रज मे और मगध के व्रात्य और अयाज्ञिक आय बुद्धिवाद के आधार पर नये नये दशनो की स्थापना करने लगे। इ ही लोगो के उत्तराधिकारी वे तीथकर लोग थे, जि होने ईसा से हजारो वष पहले मगध मे बौद्धिक विवेचना के आधार पर दु खवाद के दशन की प्रतिष्ठा की। सूक्ष्म दष्टि से देखने पर विवेक के तक ने जिस बुद्धिवाद का विकास किया, वह दाशनिको की उस विचारधारा को अभिव्यक्त कर सका जिसमे ससार दु खमय माना गया और दु ख से छूटना ही परम पुरुषाथ समझा गया।"

(काव्यकला तथा अ य निब ध, स० ५, पष्ठ ५०-५१)

प्रसाद की अपनी निष्ठा प्रथम दशन मे अविचल है, दूसरे को उ होने व्यतिरेक रूप मे अपने पक्ष को सिद्ध करने के लिए ही ग्रहण किया है। कामायनी मे फलयोग की सिद्धि श्रद्धा द्वारा होती है—अर्थात् आत्म-विश्वास पर आधत अभेदमयी आस्तिक भावना ही आनन्द की साधिका है, भेदमयी बुद्धि, इडा, बाधक है। अत बुद्धिवाद और उसके अनेक विकास-रूप कामायनी के पूवपक्ष के ही अ तगत मानने चाहिए, जो निषेध के द्वारा, व्यतिरेक-पद्धति से, सिद्धान्त पक्ष अर्थात शवाद्वत पर आधृत आन दवाद की प्रतिष्ठा करते है।

नगेन्द्र-साहित्य

भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका	१० ००
भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा	१६ ००
देव और उनकी कविता	७ ००
रीतिकाव्य की भूमिका	५ ५०
विचार और अनुभूति	८ ५०
विचार और विवेचन	४ ५०
विचार और विश्लेषण	५ ५०
सियारामशरण गुप्त	५ ५०
आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तिया	४ ००
अनुसधान और आलोचना	४ ००
कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ	३ ००

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली